

तीर्थपत्र

१७८-७९



वर्ष १५
जैन जैविकी विभांक
अंक १०-११, फरवरी-मार्च १९८६



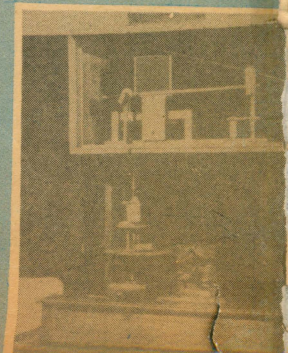
१८५८-१९३७

यह मनुष्य भी आहार करता है,
यह वनस्पति भी आहार करती है।
यह मनुष्य-शरीर भी अनित्य है
यह वनस्पति शरीर भी अनित्य है
यह मनुष्य शरीर भी आहार से उपचित होता है
आहार के अभाव में अपचित/क्षीण होता है,
वनस्पति का यह शरीर भी इसी प्रकार
उपचित-अपचित होता है,
यह मनुष्य-शरीर भी अनेक प्रकार की
अवस्थाओं को प्राप्त होता है,
यह वनस्पति-शरीर भी अनेक प्रकार की
अवस्थाओं को प्राप्त होता है

—आचारांग सूत्र, उ. ५. सूत्र ४५

“तुच्छ-से-तुच्छ वनस्पति में भी
मज्जा (चर्बी) तन्तु होते हैं।
सामान्य प्राणियों की भाँति ही
उन पर भी
बाहरी प्रभाव पड़ते हैं।
सर्दी से सिकुड़ना,
नशा, ज़हर आदि का प्रभाव
जैसा अन्य प्राणियों पर होता है
ठीक वैसा ही उन पर भी होता है।
अन्य प्राणियों की नाड़ियों-जैसी धड़कन,
रस-रक्त का आरोही-अवरोही प्रवाह,
यहाँ तक कि
मृत्यु भी वनस्पतियों की होती है।

—१९०३ ई./जगदीशचन्द्र बसु





विचार-मासिक

सद्विचार की वर्णमाला में सदाचार का प्रवर्तन

जैन जैविकी विशेषांक

वर्ष १५; अंक १०-११; फरवरी-मार्च १९८६
माघ-फाल्गुन वि. सं. २०४२; वी.नि.सं. २५१२

संपादक : डॉ. नेमीचन्द जैन
प्रबन्ध संपादक : प्रेमचन्द जैन
आकल्पन : संतोष जड़िया
छायांकन : विश्वास जैन

हीरा भैया प्रकाशन
६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर-४५२००१, मध्यप्रदेश

दूरभाष : ५८०४

वार्षिक शुल्क : तीस रुपये
प्रस्तुत अंक : दस रुपये
आजीवन : दो सौ इक्यावन रुपये
विदेशों में वार्षिक : सौ रुपये

नईदुनिया प्रिंटर, इन्दौर-४५२००९ द्वारा हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर के लिए मुद्रित

क्या / कहाँ

जैन जैविकी

—संपादकीय-१ (प्रासंगिक) ३

जैनधर्म : इक्कीसवीं सदी (४)

—संपादकीय-२ (अनुवर्ती) ८

जीव का स्वरूप : जैन विश्लेषण

—प्रलयंकर १३

मैं कहता हूँ (वनस्पतियाँ, प्लांट्स, पेड़-पौधे) १९

पृथ्वीकायिक का वेदना-बोध २२

जैनागम और वनस्पतियाँ

—कन्हैयालाल लोढ़ा २४

कतरनें २९

जैसे राजहंस निरवारे दूधजलकों

—बनारसीदास ३२

सल्लेखना ली एक हाथी ने

—डॉ. नेमीचन्द्र जैन ३३

जैन, जैविकी शब्द-कोश ४५

भ्रूण-विज्ञान : कैसे बनता है यह शरीर ? ५५

हमारा शरीर : अस्थियाँ कितनी, नसें कितनी, ५८

पेड़-पौधे भी लेते हैं साँस

—प्रलयंकर ६१

वनस्पति-जगत् के रहस्य

—डॉ. नेमीचन्द्र जैन ६३

दे सकते हैं कुछ, प्रतिष्ठा/अंजनशलाका/पंचकल्याणक/गजरथ (ललित लेख)

—सुरेश सरल ७३

ख़त : जो अन्तिम नहीं है

—गणेश ललवानी ७७

कसौटी (पुस्तक-समीक्षा) ८१

पत्र-पत्रांश ८३

समाचार-परिशिष्ट ८५

बीज-कथा ९६

जैन जैविकी

'तीर्थंकर' के पिछले अंकों में हम लगातार कहते आये हैं कि जैनधर्म के वैज्ञानिक अध्ययन/अनुसन्धान की पहल तुरन्त की जानी चाहिये; किन्तु बावजूद इसके कहीं/किसी कोने से इस ओर कोई ठोस सक्रिय कदम नहीं उठा है। इस बीच करोड़ों रुपये उन सारे कामों पर खर्च हुए हैं जिन पर एक पाई भी खर्च नहीं होनी थी; मसलन, जरूरी नहीं था कि पंचकल्याणक होते, नये मन्दिर/तीर्थ बनते, गजरथ निकलते, सैर-सपाटे होते, महँगी कॉन्फ्रेंसेज होती, अभिनन्दन/सम्मान इत्यादि होते, बल्कि जरूरी यह था कि समाज किसी जगदीशचन्द्र बसु या अल्बर्ट आइन्स्टाइन को जन्म देता जो क्रमशः १०' × २' के कमरे में बैठ कर, या पूरी सादगी से जैन जैविकी या जैन सापेक्षतावाद के सिद्धान्त के उन पृष्ठों को उजागर करता जिन्हें हज़ारों साल पहले हमारे आचार्यों ने प्राकृत और अर्द्धमागधी जैसी सुगम लोकभाषाओं में सामान्य आदमी को उपलब्ध कराया था; यह ऐसी ज्ञान-संपदा है जिस पर केवल एक कौम को नहीं, पूरे मुक्त को गर्व अनुभव करना चाहिये। जब हम अपने अतीत का लेखा-जोखा करते हैं तब हमारा ध्यान उस विशाल/विपुल विज्ञान-संपदा की ओर जाता है, जो आज की वैज्ञानिक अनुसन्धान-शालाओं के लिए आश्चर्य में डालने वाली है/हो सकती है। क्या हमारे जीवशास्त्री/प्राणिविज्ञानी उस सारे वैभव को समकालीन भाषा-शैली में विश्व के सामने रखने का कोई प्रयत्न कभी करेंगे, या समाज ऐसा अनुकूल वातावरण कभी बना पायेगा कि इस तरह का कोई वैज्ञानिक क्षितिज पर आये ?

'जैविकी' के लिए अंग्रेजी में 'बायोलॉजी' शब्द प्रयुक्त होता है। जैविकी की दो शाखाएँ हैं - वनस्पति-विज्ञान (बॉटनी), प्राणि-विज्ञान (ज़ूलॉजी)। जैनागम में ऐसी विपुल सामग्री बिखरी पड़ी है, जिसे इन दोनों शाखाओं के अन्तर्गत सज्जित/संयोजित किया जा सकता है। प्रस्तुत लघु विशेषांक के माध्यम से हम उस वैभव की कुछ बानगी देने की कोशिश कर रहे हैं। यह उस विज्ञान-सिन्धु का एक नगण्य बिन्दुमात्र है।

जैन शास्त्रों में छह द्रव्य माने गये हैं : जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। जीव द्रव्य पर दिगम्बर/श्वेताम्बर दोनों ही शास्त्रों और सूत्रों में विस्तार से चर्चा-समीक्षा हुई है। आश्चर्य का विषय यह है कि यह सारी सामग्री जन-स्तर पर जनवाणी में दी गयी है। यदि हम काल-निर्धारण की जटिल प्रक्रिया में न उलझें तो

पायेंगे कि कम-से-कम इस सामग्री को अस्तित्व में आये दो हजार वर्ष से ऊपर हो गये हैं। भगवान् महावीर इतिहास-पुरुष हैं। वहाँ तक इतिहास की संवेदनशील/प्रामाणिक अँगुलियाँ जा लगती हैं। दार्शनिक अरस्तू महावीर से कनिष्ठ होता हुआ भी उनका समकालीन था। उसने भी 'साइकी' के रूप में जैव तत्त्व का वर्णन किया है। जैनागमों में जीव द्रव्य का विस्तार से वर्णन हुआ है, उतने ही विस्तार से जितने विस्तार से परमाणु/पुद्गल का। सारा ब्यौरा वैज्ञानिक है; इतना असंदिग्ध कि यदि एक बार हमारे वैज्ञानिक उसे प्रयोगशाला में ला कर पुष्ट करें तो विश्व-भर के वैज्ञानिक अचंभे में पड़ जाएँ।

जीव को उपयोगमय कहा गया है। चेतना/ज्ञान उसका प्रमुख लक्षण है। उसे संसारी और मुक्त दो वर्गों में रखा गया है। संसारी जीवों को छह काय के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है; ये हैं: एकेन्द्रिय (वनस्पतिकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक) तथा त्रस। वनस्पति, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु जीव अन्तहीन हैं; इन्हें कूतना संभव नहीं है। वनस्पतिकायिक के अन्तर्गत 'निगोद' का वर्णन आया है। निगोद आरंभिक जैव द्रव्य के उपनिवेश (कॉलोनी) स्रोत (सोर्स) हैं और लोकाकाश-पर्यन्त ठसाठस भरे हैं। निगोद का जो बयान जैन शास्त्रों में हुआ है, वह सब दिलचस्प तो है ही तर्कसम्मत और तथ्यात्मक भी है। इस संबन्ध में इसी अंक में दिये जा रहे विशिष्ट शब्द-कोश (ग्लॉसरी) तथा लेख में-से अधिक जानकारी ली जानी चाहिये। जलकायिक आदि जीवों का जो वर्णन आया है, वह अत्यन्त सूक्ष्म, वर्गीकृत और वैज्ञानिक है। मसलन, इसे चार तरह से रखा गया है: जल (सामान्य/पुद्गलरूप); जलकाय (वह जल जिसमें से जीव जा चुका है); जलकायिक (वह जीव जो वर्तमान में जलरूप शरीर धारण किये हुए है); जलजीव (जो विग्रहगति में है अर्थात् जिसने जलकाय को तो त्याग दिया है किन्तु जिसके जलकायिक होने की संभावना है)। इस तरह जल; माध्यम तथा जलजीव के भूत, वर्तमान तथा भावि/भविष्यत् के रूप में वर्णित है। यह संपूर्ण इतना वैज्ञानिक है कि कोई भी स्तब्ध हुए बिना नहीं रह सकता। जैसा वर्गीकरण जल का हुआ है, ठीक वैसा ही वनस्पति, पृथ्वी, अग्नि और वायुकायिक जीव का हुआ है।

यदि हम 'आचारांग सूत्र' (आयारो, अ. १, उ. ५, सूत्र ४५) को देखें तो हम न केवल आश्चर्यान्वित बल्कि चकित रह जाएँगे। इसमें मनुष्य की तुलना वनस्पति से की गयी है। महावीर ने कहा है कि वृक्ष और मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है: से बेमि — इमं पि जातिधम्मयं, एयं पि जातिधम्मयं; इमं पि बुद्धिधम्मयं, एयं पि बुद्धिधम्मयं/मं कहता हूँ—यह मनुष्य भी जन्म लेता है, यह वनस्पति भी जन्म लेती है; यह मनुष्य भी बढ़ता है, यह वनस्पति भी बढ़ती है, इत्यादि।

क्या महावीर के इस कथन को हमारे वैज्ञानिक डॉ. जगदीशचन्द्र बसु के इस सदी के आरंभ में उनके द्वारा लिये गये निष्कर्षों के साथ पढ़ना पसन्द नहीं करेंगे ?

वनस्पति को ले कर हमारे यहाँ तकनीकी शब्दावली का बड़ा सूक्ष्म विकास हुआ है। 'मूलाचार' में आचार्य वट्टकेर ने वनस्पति, वृक्ष, औषधि, गुल्म और वल्ली में फर्क किया है। जिसमें फली लगती है वह 'वनस्पति' है, जिसमें फूल-फल लगते हैं वह 'वृक्ष' है, जो फलों के पक जाने पर नष्ट हो जाती है वह 'औषधि' है। गुल्म और वल्ली 'वीरुध' हैं। जिसकी शाखाएँ छोटी हैं और जिसके मूल जटाकार हैं, ऐसे छोटे झाड़ 'गुल्म' हैं। जो पेड़ पर चढ़ती हैं और वलयाकार रहती हैं वे 'वल्ली' हैं। इस तरह ध्यान से देखने पर जैनागमों में वर्णित जैव द्रव्य-मीमांसा न सिर्फ महत्त्व की है, अपितु अत्यन्त वैज्ञानिक और प्रासंगिक है।

इतना ही नहीं जैनागमों में भ्रूण/गर्भशास्त्र (एम्ब्रियोलॉजी) का भी गहन अध्ययन हुआ है। आचार्य शिवार्य की 'भगवती आराधना'; 'भगवती सूत्र' ऐसे जीवन्त वर्णनों से भरे पड़े हैं। भ्रूण कैसे बनता है? प्रथम मास के १०-१० दिनों में उसका क्रमवर्ती विकास किस तरह होता है? माता से कौन से अवयव तथा पिता से कौन से अवयव उसे मिलते हैं? भ्रूणावस्था में उसके आहार की क्या व्यवस्था होती है? इत्यादि का जो वर्णन शास्त्रों में आया है, वह शल्यविज्ञान के परिपूर्ण विकास की अनुपस्थिति में कैसे हुआ यह आश्चर्य का विषय है? 'रसहरणी' नाड़ी कौन-सी है, जो आहार के लिए भ्रूण को माता से एकरस रखती है? गहन खोज का विषय है।

इसी तरह मानव-शरीर-रचना को ले कर जो तथ्य हमें जैन शास्त्रों में मिलते हैं, वे भी चिन्त्य हैं। 'भगवती आराधना' की गाथा १००१-१०३० में मानव-शरीर-रचना (अनाटोमी) का विशद वर्णन हुआ है। मापतौल और संख्याएँ तक दी गयी हैं। इस परिमाण और इन संख्याओं को खोजना चाहिये ताकि देखा जा सके कि शल्यविज्ञान के अलावा मनुष्य के भीतर ऐसी कौन-सी आश्चर्यजनक शक्ति है, जो वस्तुओं को उनकी नाना पर्यायों में युगपत् देख सकती है? 'भगवती आराधना' में कहा गया है कि मनुष्य-शरीर में ३०० हड्डियाँ, ३०० अस्थि-सन्धियाँ, ९०० स्नायु, ७ शिराएँ, ५०० मांस-पेशियाँ, ४ शिराजाल (नाड़ी-तन्त्र), १६ महा-शिराएँ, ६ शिरामूल, २ मांस-रज्जु, ७ त्वचाएँ, ७ कालेयक मांस, ८० लाख करोड़ रोम, १ पक्वाशय, १ आमाशय, ७ मलस्थान, ३ थूणाएँ, १०७ मर्मस्थान, ९ व्रण-मुखमल द्वार, १ अंजलि मस्तिष्क, १ अंजलि मेद, १ अंजलि वीर्य, ३ अंजलि चर्बी, ६ अंजलि पित्त, ६ अंजलि कफ, ३२ पल रुधिर, १ आठक मूत्र, ६ प्रस्थ विष्ठा, २० नख, ३२ दाँत तथा शरीर में/को घेरे ५ वायुएँ होती हैं। क्या इस सारी

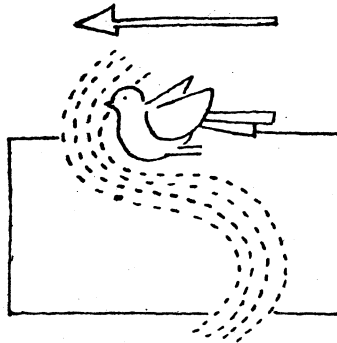
जानकारी को हम काल्पनिक मानें, या इसे पुष्ट करने का कोई उपाय करें? इसी अंक में अन्यत्र इन परिमाणों को देखें तथा तुलनात्मक स्थिति का परिदर्शन करें। कोशिकाओं (सेल्स) और ऊतकों (टिस्सू) के बारे में भी इसी अंक में अन्यत्र देखें ।

यदि 'आचारांग सूत्र', 'भगवती सूत्र', 'मूलाचार', 'भगवती आराधना' इत्यादि की बगल में 'द प्रायवेट लाइफ ऑफ प्लांट्स'/रोजर ग्राउंड्स/१९८०; 'द सीक्रेट्स ऑफ प्लांट्स'/पीटर टॉम्पकिन, क्रिस्टफर बर्ड/१९७२; 'इसेक्ट्स'/एम.एस.मणि/१९७१ इत्यादि को देखें तो पायेंगे कि हमारी उपलब्धियाँ अधिक हैं, व्यवस्थित हैं, और ऐसी हैं, जिन्हें दुनिया के सामने तत्काल रखा जाना चाहिये। इधर की विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में वनस्पति/अग्निकायिक जीवों के बारे में जो तथ्य प्रत्यक्ष हुए हैं, उन्हें यदि जैन वैज्ञानिक एकत्रित कर सामने रखें/तुलनात्मक दृष्टि से परखें तो प्रायोगिक क्षेत्र में भी इनमें से अनेक तथ्य नकारे नहीं जा सकेंगे। पेड़-पौधे और पशु-पक्षी जैन तीर्थंकरों के लक्षणों/चिह्नों के रूप में क्यों प्रयुक्त हैं— इस तथ्य पर भी विज्ञान की छाया में रोशनी डालना संभव है। क्या हम अपनी साधना में प्रकृति से जुड़े नहीं रहे हैं? ऐसा क्यों हुआ है कि सर्प/सिंह/मगर जैसे आमिषभोजी जीवों को क्रमशः पाश्वर्नाथ/महावीर/पुष्पनाथ के साथ जोड़ा गया? क्या यह कोई समाज-शास्त्रीय स्थिति थी, या मात्र स्मृति और भेद के लिए इन्हें परिकल्पित किया गया था? क्या ये सब प्रतीक हैं, या इनके पीछे कोई सुस्पष्ट जीवन-दर्शन है? आरंभ के दो तीर्थंकर बैल और हाथी के चिह्न लिये हुए हैं। ये दोनों शाकाहारी हैं। दोनों समझदार, पालतू और शक्तिशाली हैं। दोनों का भारतीय संस्कृति से बहुत पुराना/गहरा सम्बन्ध है। क्या इन दोनों के वर्णनों में कोई रहस्य है? क्या केन्नेथ एंडरसन जैसे शिकारी-लेखक ने अपनी कृति 'द टायगर रोड्स' (पृ. १३१-१४०) में जिस हाथी की सल्लेखना (?) का वर्णन किया है वह हाथी के विवेक/विकास से जुड़ा हुआ दिखायी नहीं देता? क्या 'आदिपुराण' में गज-वाहन का जो वर्णन आया है, वह आश्चर्य में डालने वाला नहीं है? क्या ऐसा कोई ग्रन्थ है, जिसमें हाथी का इतना साफ-सुथरा वर्गीकरण दिया गया है?

'आदिपुराण' (३०/४९, २९/१२२) में हाथी (हस्तिन्) का वर्णन आया है। इसमें हाथी-हथिनियों के प्रकार दिये गये हैं: द्विप, मातंग, कुंजर, दन्ती, द्विरद, स्तम्बेरम, भीलुकगज, करी, नाग। 'द्विप' उस हाथी को कहा गया है, जिसके गण्ड-स्थल से मद झरना शुरू हो जाता है; 'मातंग' गजों की वह जाति है, जो मदन से उद्दीप्त हो कर उन्मत्त हो जाता है। 'मातंग' को तालाबों और नदियों में जल-क्रीड़ा में बड़ा रस आता है। इसका सामरिक महत्त्व है। 'कुंजर' भी मदनोन्मत्त हाथी

के लिए प्रयुक्त पर्याय शब्द है। ध्यान रहे, उग्र और प्रचण्ड कार्यों के लिए मातंग के बाद कुंजर का ही इस्तेमाल होता है। कुंजर राज सवारी के लिए और मातंग फौजियों के निमित्त काम में आता है। 'दन्ती' सामान्यतया उस हाथी के लिए प्रयुक्त शब्द है, जिसकी उम्र २० से अधिक होती है और जिसके दाँत निकल आते हैं। दन्ती कई बार बेकाबू हो जाता है। यह प्रायः कदली-वनों में पाया जाता है। दन्ती से कम शक्तिवाला होता है 'द्विरद'। दन्ती की अवस्था द्विरद से कुछ अधिक होती है। द्विरद को सहज ही काबू में लिया जा सकता है; किन्तु दन्ती को वश में करने के लिए काफी कोशिश करनी होती है। इसे हम कुली हाथी कह सकते हैं; क्योंकि युद्ध-काल में इसका सामान ढोने में उपयोग होता आया है। 'स्तम्बेरम' सघन झाड़ियों में रहने वाला हाथी है। इसे प्रशिक्षित कर वाहन के रूप में काम में लिया जाता है। 'भीलुकगज' डरपोक होता है। 'भीलुक' शब्द से भी यही ध्वनित होता है। इसे प्रायः सवारी के रूप में उपयोग में लिया जाता है। 'करी' पालतू होता है। यह उत्तम कोटि का हाथी माना जाता है। इनमें भी जो सर्वोत्तम होता है उसे 'करीन्द्र' कहते हैं। करीन्द्र का इस्तेमाल प्राचीन काल में सम्राटों/चक्रवर्तियों द्वारा होता था। 'नाग' फुर्तीला और समझदार होता है। इसे सामान्यतः सैन्य कार्य के लिए काम में लेते हैं/थे। 'करेणु' हथिनियों के लिए प्रयुक्त शब्द है। रानियों करेणुओं का उपयोग करती थीं। हथिनी के लिए 'धेनुका' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। तरुण हाथी के लिए 'वर्क' शब्द काम में आया है। सामान्यतः हाथी की आयु ७५-१०० के बीच मानी गयी है।

इस तरह यदि हम विस्तार में जाएँगे तो देखेंगे कि जहाँ जैनागमों में एक ओर जीव-तत्त्व के स्वरूप को गहराई से खोजा और परिभाषित किया गया है, वहीं दूसरी ओर उसके वर्गीकरण और विस्तार को भी पूरी वैज्ञानिकता के साथ जानने के ठोस प्रयत्न किये गये हैं। क्या हम अपने इस दुर्लभ खजाने को कभी बाहर ला पायेंगे ?



जैनधर्म : इक्कीसवीं सदी (४)

पिछली तीन किस्तों में हमने जैनधर्म के ढाँचे में संभावित परिवर्तनों पर विचार किया है; सोचा है कि जब चारों ओर इमारतों के बियावाँ जंगल खड़े हो रहे हैं, तब यदि इमारत (अमृत) हमारी मुट्ठी में-से खिसक जाए, अंजुलि में-से रिस जाए तो कोई ताज्जुब नहीं है। अनुमान है कि आने वाली सदी में हमारे चरित्र की इमारत बेहद कमजोर हो जाएगी और हमारे इर्द-गिर्द ईट, पत्थर, लोहे, सीमेंट की इमारतों की आबादी बढ़ जाएगी। वस्तुतः होगा यह कि बौद्धों की हालत किसी जमाने में जो हुई थी, इक्कीसवीं शताब्दी में जैनों की भी वही/वैसी हो जाएगी। जैनधर्म के समृद्ध अवशेष यत्रतत्र मौजूद होंगे, किन्तु जैन नहीं होंगे; यदि होंगे भी तो जैनत्व-रहित। बौद्धों की भव्य/विशाल इमारतें आज हैं; किन्तु बौद्ध नहीं हैं; ठीक इसी तरह जैन होंगे, जैनाचार नहीं होगा; वह नाम-शेष होगा। जब इस तरह की आशंका हमें लगातार दीख पड़ रही है, तब सवाल है हम चौकस/खबरदार क्यों नहीं होते? क्यों ऐसा नहीं है कि हम आने वाले खतरों के प्रति सावधान हो जाएँ? क्या यह उचित नहीं होगा कि हम इमारतों की जगह जीवन के असली अमृत की खोज आरंभ कर दें? क्या हम क्रिया-काण्डों में लौटने की जगह अपने मूलाचार में वापसी का सफर शुरू नहीं कर सकते?

यह उपयुक्त क्षण है जब हमें श्रमणाचार और श्रावकाचार से संबन्धित जो ग्रन्थ हमारे पास हैं, उनके परिवर्द्धित/पुनरीक्षित संस्करणों पर विचार करना चाहिये। यह बहस सर्वथा निराधार और सारहीन होगी कि “दशवैकालिक”, “मूलाचार”, “अनगार धर्माभूत” “रत्नकरण्ड श्रावकाचार” जैसे ग्रन्थों पर पुनर्विचार करें या नहीं? क्या इन/ऐसे मुद्दों पर व्यापक बहस की ज़रूरत है? क्या हाथ कंगन को आरसी चाहिये? क्या उपस्थित सन्दर्भों में हमें श्रमणाचार/श्रावकाचार पर विवेक-पूर्वक विचार नहीं करना चाहिये? अपेक्षया इसके कि संपूर्ण आचार वक्त की चोट खा कर खत्म हो, हमें ऐसे आचरणीयों को चुन-छाँट लेना चाहिये जिनसे जैनधर्म की मौलिकताओं की रक्षा हो सके और उसकी अस्मिता के इर्द-गिर्द एक अमोघ रक्षा-कवच बनाया जा सके। हमें बहुत साहस के साथ वर्तमान साधुता और श्रावकता की वस्तुनिष्ठ जाँच-परख करनी चाहिये। इस सिलसिले में इस बात की चिन्ता हमें कतई नहीं करनी है कि कौन बुरा मानेगा, कौन भला; बल्कि हमें यह देखना होगा कि हमारे आचारधर्म की भावी/प्रासंगिक/सार्थक/जैनधर्म की मौलिकताओं

से जुड़ी शकल क्या होगी? मूल से छिन्न होने पर तो डाल-पात सब सूख-मुरझ जाएँगे इसलिए मूल से टूटने-हटने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है; प्रश्न है उस खरपतवार की सफाई का जिसने हमारी आचारगत उपयोगिताओं और सार्थकताओं को नष्ट या विकृत कर दिया है और बात इस हद तक आ पहुँची है कि अब हमारी मूल पूँजी ही खतरे में आ गयी है।

ऐसे में हमें जैनाचार के मूलभूत सिद्धान्तों को निर्देशक सिद्धान्तों के रूप में मशाल की तरह प्रतिपल आँखों के सामने रखना चाहिये। तय है; हमें यह देखना होगा कि विज्ञान और टेक्नॉलॉजी (प्रौद्योगिकी) ने कौन-कौन-सी सुविधाएँ और असुविधाएँ हमारे सामने ला खड़ी की हैं? यातायात के साधन विकसित हुए हैं; मीडिया का बेइन्तहा और तीव्रगामी विकास हुआ है; लोभ-लालच बढ़ गये हैं, अतः हमारे भीतर वासना का जो सूक्ष्म बीज-जन्मान्तर से बना हुआ है वह अँकुराने लगा है। परिग्रह की अन्तहीन संभावनाएँ - भयावह - सामने आ खड़ी हुई हैं। “दशवैकालिक” में जिन बावन अनाचीर्णों की चर्चा की गयी है, उनमें से कई आज आचीर्ण हो गये हैं। ऐसे में क्या यह संभव है कि प्रबुद्ध/सहिष्णु श्रावकों का कोई सम्प्रदायातीत दल सारे देश का दौरा करे और यह देखे कि “दशवैकालिक” और “मूलाचार” की स्थिति आज क्या है? यदि “मूलाचार” की गाथाएँ और “दशवैकालिक” के अध्ययनों को चोट लगी है, तो क्या हमारा यह फर्ज नहीं है कि हम इन आचार-ग्रन्थों के आधार पर जैनधर्म की मौलिकताओं को दृष्टि में रखते हुए “नवमूलाचार” और “नवदशवैकालिक” का आविर्भाव करें? हमें लगता है दस सयंकाल-इस अनिवार्यता के खाते में अवश्य डाले जा सकते हैं। इसमें किसी के भयभीत/आतंकित होने की आवश्यकता नहीं है, जो भी है वह बदली हुई परिस्थितियों का स्पष्ट जायजा लेने के लिए और एक सामयिक/सार्थक सर्वेक्षण के निमित्त है।

इधर-उधर भारतीय विश्वविद्यालयों में जैनपीठें स्थापित करने और भारी-भरकम/खर्चीले सम्मेलन करने, बड़े-बड़े तीर्थ और संग्रहालयों की स्थापना करने, अभिनन्दन-ग्रन्थों/स्मारिकाओं/स्मृति-ग्रन्थों आदि के प्रकाशन की अपेक्षा यदि हम जैनाचार पर विस्तृत-गहन अध्ययन के साथ उसकी शब्दशः समीक्षा करते हैं और कोई सर्वसम्मत निर्णय लेते हैं तो यह एक बहुत बड़ा कार्य होगा। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम उक्त ग्रन्थों का गहन अध्ययन करें और फिर उनकी विषय-वस्तु की प्रासंगिकता पर ग्रूप-डिस्कसन करें तथा उसकी मैदानी स्थिति की जाँच करें? बड़े-बड़े आयोजनों की अपेक्षा अब हमें विनम्र और छोटे ऋद के बौद्धिक आयोजनों की आवश्यकता है, ऐसे आयोजनों की जो साधुओं और श्रावकों के

आचार-धर्म की समकालीन सन्दर्भों में बेलाग समीक्षा करते हों और नवाचार के लिए प्रयत्नवान हों। क्या हम/इन/ऐसी संभावनाओं पर अपने सारे जरूरी काम छोड़ कर बिना किसी दहशत के विचार नहीं करना चाहेंगे ?

इस मुद्दे पर हमें दो तरह से विचार करना होगा : एक — ऐसी स्थितियों को जो तत्कालीन समाज के लिए सार्थक थीं और अब निरर्थक हैं; खारिज कर दें। दो — ऐसी स्थितियों को जो जैनधर्म/दर्शन के चिरन्तन मूल्यों से संबन्धित हैं और आज भी प्रासंगिक हैं; पूरे बल के साथ आधुनिकतम भाषाशैली में व्याख्यायित करें। मानिये, यदि हमने ऐसा नहीं किया तो हमें पूरी तीव्रता में अनुभव करना चाहिये कि आने वाली सदी में 'जैन तो होंगे, जैनत्व नहीं होगा' जैसा कि आज हम भारतीय हैं; किन्तु हममें से अधिकांश भारतीयता से रिक्त हैं; इसी तरह यदि हमने किसी रिनेसां के दबाव को इस क्षण महसूस नहीं किया तो हम जैन तो होंगे; किन्तु जैनत्व से खाली होंगे। यह स्थिति काफी दयनीय होगी।

कई दृष्टियों से जैन समाज को आज एक व्यापक पुनर्जागरण (रिनेसां) की आवश्यकता है। धार्मिक दृष्टि से ही यदि हम लें तो हमें प्रतीत होगा कि हम धर्मान्ध तो हैं, किन्तु आध्यात्मिक नहीं हैं। जैनाध्यात्म और जैनधर्म को जबकि समानान्तर चलना था मुश्किल यह हुई है कि जैनाध्यात्म निस्तेज हो गया है या मात्र चर्चा/स्वाध्याय का विषय रह गया है और धर्म सिर्फ शब्द रह गया है। वस्तुतः अध्यात्म धर्म की अन्तर्मुखता का नाम है। आज यह अन्तर्मुखता अनुभव की जगह मात्र बहस और संघर्ष की चीज रह गयी है, या फिर इसने किताबी शकल ग्रहण कर ली है। ऐसे में क्या हम उस पुनर्जागरण की प्रक्रिया में नहीं आ सकेंगे जिसमें जैनाध्यात्म की निर्मल वापसी होगी और साधु/श्रावक दोनों जैनधर्म की प्राणधारा के पोषण में तत्पर हो जाएँगे इमारतों और कम्प्युनिटी हॉलों के निर्माण का खर्च छोड़ कर ?

आज नैतिक रिनेसां का दबाव भी हममें से हर एक महसूस करता है। हम जानते हैं कि बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जैन नीतिशास्त्र की काफी धज्जियाँ उड़ी हैं। जैनों को जिस नीतिशास्त्र/आचारधर्म का जीवन्त प्रतीक माना जाता था उन्हीं का अपने हाथों आज अधःपतन हुआ है? क्या नहीं हुआ है जैनों के हाथों विगत बीस-तीस सालों में? तस्करी, करापवंचन, प्रदूषण, हिंसा, क्रल, मिलावट, आपसी खून-खराबा इत्यादि सारी चारित्रिक गिरावटें तो एक-के-बाद-एक दुनिया के सामने आयी हैं। ऐसी कौन-सी आपराधिकता शेष है, जिसके साथ जैनों का नाम नहीं जुड़ा है? खान-पान को ले कर भी हम गिरे हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह, असंयम — आज ऐसी चुनौतियाँ हैं, जिन्हें हमें पूरे विवेक के साथ झेलना था और जन-जीवन के सामने उत्कृष्ट उदाहरण बन कर जीना था; किन्तु हम "जैन"

नहीं रहे, हमारा इस क्रूर सामान्यीकरण हुआ और हम इस तरह बुराइयों/व्यसनों के शिकार हुए कि लोग पूरे समाज को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। संस्कारवश पूरी फसल चौपट नहीं हुई; किन्तु जो धक्का हमें लगा है उससे उबर पाने में काफी समय लगेगा। इन सारे हालातों को देखते क्या हम नैतिक रिनेसाँ की दिशा में इस सदी के अस्त होने से पूर्व कोई ठोस कदम नहीं उठा पायेंगे? क्या हम इतिहास में इस सबको दर्ज होने देंगे? क्या हम कालचक्र को रोक नहीं पायेंगे? हमें चाहिये कि दीपक की लौ कम हो इससे पहले अपने चरित्र के दीये में निष्ठा और अप्रमत्तता की स्नेहधार छोड़ें और अपनी खोयी जाती अस्मिता को नव-जीवन दें।

इस बीच हमारा सामाजिक ढाँचा भी चरमराया है। धन-संपदा ने हम पर बेतरह छाना शुरू किया है। विवाह-संस्था की स्थिति काफी बिगड़ी है। कई उदाहरण ऐसे सामने आये हैं, जिनसे हमारा सिर शर्म से झुक गया है। धन के लालच में हमने ऐसे कुछ कार्य किये हैं, जो जैनाचारोचित नहीं हैं। असल में स्त्री-शक्ति को जगाने की जगह हमने उसे दबाने का प्रयत्न किया है। इस शक्ति का विशिष्ट उपयोग करने की जगह हमने इसे अन्य समाजों की ओर मोड़ दिया है। कई जैन महिलाएँ अन्यत्र काम कर रही हैं और जैन समाज उनकी प्रतिभा से वंचित है। इस तरह जैन समाज की पारिवारिक रमणीयता भी समाप्त होने को है। हम देख ही रहे हैं कि जैन गृहस्थ की जो छवि थी, 'इमैज' थी वह लगभग ध्वस्त हो गयी है। जिस सादगी, समर्पण और त्याग के बलबूते हम दुनिया के सामने अपना मस्तक ऊँचा किये हुए थे वे पता नहीं कहाँ लुप्त हो गये हैं? हमें यत्न करना होगा कि जैन स्त्री-शक्ति मैदान में आये और रिनेसाँ की रीढ़ बने, आने वाली पीढ़ी की बागडोर वह अपने हाथ में ले। वह आगे आये और हमारी लुप्त होती अस्मिता को सहारा दे।

शाकाहार की ओर भी हमें पूरा ध्यान देना होगा ताकि जनजीवन के तल पर हम अहिंसा की रक्षा कर सकें। आश्चर्य है: आज जब कि पश्चिम के मूलक शाकाहार की महत्ता/उपयोगिता को पहचान रहे हैं, हमारी किशोर और युवा-पीढ़ी उसे गौरव के साथ महत्त्वहीन कर रही है। शाकाहार के मूल्यों को हमें सामाजिक पटल/स्तर पर जगाना चाहिये और ऐसा वातावरण बनाना चाहिये कि करुणा का शासन फिर एक बार लौट सके। इससे पारिस्थितिकी (इकॉलॉजी) को भी पुनरुज्जीवन मिलेगा और प्रकृति का स्वलित सन्तुलन सँभाला जा सकेगा।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस सदी के साँझ तक पहुँचने से पूर्व हमें कुछ काम कर लेने चाहिये। सांस्कृतिक पुनर्जागरण (कल्चरल रिनेसाँ) की दृष्टि से हमें सबसे पहले अपने इतिहास की परिशुद्धि करनी चाहिये। देखना चाहिये कि जैनधर्म/दर्शन को ले कर इतिहासवेत्ताओं ने कहाँ-कहाँ भूलों की हैं तदनन्तर जैन इतिहास के पुनर्लेखन की दिशा में कोई पुख्ता कदम उठाना चाहिये। अधिकांश कोशों, विश्वकोशों और इतिहास-ग्रन्थों में जैनधर्म की प्राचीनता को ले कर काफी कुछ भ्रामक छपा हुआ है; इसे हम हटायें/हटवायें। इतिहासवेत्ताओं के हाथ में उन सारी प्रामाणिकताओं को पहुँचायें जो उक्त तथ्यों को अकाट्य बनाती हैं। इस संदर्भ में

हमारा ध्यान मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में मिले अवशेषों की ओर जाता है। इन अवशेषों में जैनत्व के प्रामाणिक/परिपक्व संकेत मिले हैं। इन सारे प्रागैतिहासिक/पुरातात्विक तथ्यों का आकलन और व्याख्यान होना चाहिये ताकि इतिहासिक विवरणों को अधिक प्रामाणिक बनाया जा सके तथा चली आ रही भ्रान्तियों का उन्मूलन हो सके। इसके अलावा भी नयी खोजों से जो तथ्य प्राप्त हुए हैं उन्हें भी पूरी सावधानी से आकलित करना चाहिये ताकि सम्पूर्ण जैन इतिहास का पुनर्लेखन संभव हो सके।

एक और क्षेत्र ऐसा है जिसकी ओर हमारा ध्यान बिलकुल नहीं है। जैन-धर्म की शिक्षा की ओर हमारी कोई तवज्जह नहीं है। हमारे पुरखों में तत्कालीन सन्दर्भों में जिस तरह जैन शिक्षा को मन्दिरों/स्थानकों/उपाश्रयों में जमाया था, उसे हम अपनी आँखों के सामने लगातार उखड़ता देख रहे हैं। न तो हमारे पास अच्छे अध्यापक हैं और न ही अध्यापन के वैज्ञानिक/सुविकसित साधन/उपकरण जिनके माध्यम से हम सभी वय-समुदायों के लिए जैनधर्म-की-शिक्षा को मुहैया कर सकें। हम बुनियादी धार्मिक और आचरणिक मूल्यों पर कोई ध्यान नहीं दे रहे हैं, देखादेखी हमारा ध्यान विश्वविद्यालयीन स्तर की शिक्षा की ओर बार-बार गया है; किन्तु वहाँ भी न तो हमारे पास अच्छे साधन हैं, न पाठ्यग्रन्थ; ऐसी कोई समृद्ध लायब्रेरी भी नहीं है, जहाँ बैठ कर देश-विदेश के जिज्ञासु जैनधर्म/दर्शन का अध्ययन कर सकें। इस क्षेत्र में जो भी छिटपुट प्रयत्न हुए हैं वे इतने महत्वाकांक्षी और दीर्घाविधिक हैं कि जल्दी ही उनका कोई फल सामने आयेगा इसकी संभावना नहीं है; अतः यह एक ऐसा मैदान है जिसमें हमें विज्ञान के आविष्कारों का भरपूर उपयोग करना चाहिये।

एक इलाका जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित उन तथ्यों का है जो वैज्ञानिक तो हैं; किन्तु जिन्हें प्रयोगशाला में पुष्ट नहीं किया जा सका है। यह नहीं कि जैन समाज के पास अच्छे चिकित्सक, औषध-विज्ञानी, गणितज्ञ, भौतिकीवेत्ता, रसायन-शास्त्रज्ञ, जीव-विज्ञानी और वनस्पतिशास्त्री नहीं हैं; हैं, किन्तु सब रूठ कर या तो विदेश चले गये हैं या भारतीय विश्वविद्यालयों में रोटी-रोजी से जा लगे हैं—समाज में उन्हें वह प्रतिष्ठा नहीं मिल सकी जिसके पात्र वे थे। क्या यह संभव नहीं है कि हम देश में एक ऐसी सर्वसाधन-संपन्न केन्द्रीय प्रयोगशाला स्थापित कर जिसमें जैन समाज के शीर्षस्थ वैज्ञानिकों को पूरे सुविधा-साधन उपलब्ध कराये जाएँ और फिर उन सारे तथ्यों को जो 'तत्त्वार्थसूत्र'—जैसे ग्रन्थों तथा उसकी टीकाओं में भरे पड़े हैं, पुष्ट किया जाए? आहार और पेड़-पौधों/जीव-जन्तुओं को ले कर भी कई तथ्यों को पुष्ट करना जरूरी है। वनस्पति-जगत् को ले कर जो जानकारियाँ सामने आयी हैं, अभी तो जैनों के पास उनका व्यापक और परिपूर्ण संकलन ही नहीं है, पुष्टिकरण की पहल तो दूर की बात है। क्या हम वर्तमान शताब्दी के खत्म होने और इक्कीसवीं सदी के आरंभ होने से पहले ऐसा उल्लेखनीय कुछ कर पायेंगे जो हमारी अस्मिता की रक्षा कर सकें? □

जीव का स्वरूप : जैन विश्लेषण

अंग्रेजी में जैविकी के लिए बायोलॉजी (*Biology*) शब्द प्रयुक्त है ।

बायोलॉजी दो शब्दों से बना है—

बायोस (*Bios*) ग्रीक शब्द है जिसके मायने हैं जीवन लाइफ (*Life*) तथा लॉगॉस (*Logos*) का अर्थ है विवरण (अं. डिस्क्रिप्शन *Description*) । यह भी ग्रीक शब्द है अर्थात् जीव का/जीवन का स्वरूप जिसमें विवृत/वर्णित है विज्ञान की वह शाखा है जैविकी/बायोलॉजी ।

जैविकी की दो शाखाएँ हैं — प्राणिकी (जूलाँजी) और वानस्पतिकी (बाँटनी) ।

जूलाँजी ग्रीक शब्द जोइऑन (*Zoion*) जन्तु से बना शब्द है, जिसका संपूर्ण अर्थ है विज्ञान की वह शाखा जो जीव-जन्तुओं का अध्ययन/अनुसंधान करती है ।

बाँटनी (*Botany*) ग्रीक शब्द बाँटने (*Botane*) से बना है, जिसका अर्थ है पौधा या जड़ी-बूटी अर्थात् विज्ञान की वह शाखा जो पेड़-पौधों का अध्ययन करती है उसे वान-स्पतिकी कहते हैं ।

धर्म और विज्ञान दोनों सोद्देश्य ज्ञानक्षेत्र हैं ।

धर्म का उद्देश्य प्राणिमात्र को दुःख-से-मुक्त करना और एक ऐसे चिरन्तन/शाश्वत सुख की ओर ले जाना है, जो अनन्त है ।

धर्म संसार को भंगुर/नाशवान मानता है इसीलिए वह सदैव ऐसी स्थिति की खोज में रहा है जो अमर है, जिस पर मृत्यु का पंजा नहीं है ।

मृत्यु क्या है ? प्राणों * का वियोग मृत्यु है ।

जन्म क्या है ? प्राणों का संयोग जन्म है ।

जन्म-मरण की इस श्रृंखला/संतति को नष्ट करना मुक्ति है ।

धर्म, इसीलिए, पर्यायों के बीच शुद्ध द्रव्य की खोज की ओर उन्मुख अस्तित्व है ।

तीन शब्द हैं उत्पाद/व्यय/ध्रौव्य । उत्पाद और व्यय का संबन्ध पर्याय (*Forms*) से है । उत्पत्ति और नाश रूप/आकृति का ही संभव है; रूपायित/आकृत ध्रुव है, अविनाशीक है । धर्म आकृत की खोज का विज्ञान है, आकृतियों की खोज का विज्ञान नहीं है ।

* प्राण दस है—स्पर्शन, जिह्वा, घ्राण, चक्षु, कर्ण, वचनबल, कायबल, मनोबल, श्वासो-च्छ्वास, और आयु ।

आधुनिक विज्ञान आकृत की जगह आकृतियों की खोज पर केन्द्रित है। असल में पकड़ा आकृतियों को ही जा सकता है, आकृत का क्षेत्र अनुभूति का क्षेत्र है; अतः ऐसा विज्ञान जो अविचल आस्थाओं में शुरू होता है और आचरण की श्रेष्ठताओं में से गुजरता हुआ कैवल्य की ओर जाता है धर्म है।

जैनधर्म ने जीव और आत्मा में फर्क किया है।

संसारी दशा में प्राण धारण करने से आत्मा के छद्म/प्रच्छन्न रूप को जीव कहा गया है। जब जीव-पर-से संसाररूपी छिलका/विष्टन उतर जाता है और वह अपने यथार्थ रूप में प्रकट होता है तब उसे आत्मा कहते हैं। जीव और आत्मा के इस भेद को न जानने के कारण सामान्यतः इन शब्दों को एक ही अर्थ में काम में लिया जाता है।

जैनधर्म का मूल प्रयोजन/मुक्ति है; इसीलिए उसकी साधना का समस्त संयोजन मोक्ष की उपलब्धि के लिए ही है

विज्ञान का उद्देश्य जगत् के रहस्यों को खोजना और प्रत्यक्ष जानना है। वह पार्थिव सत्तों का शास्त्र है। वह आकाश में, धरती पर, धरती के नीचे, जल की अतल गहराइयों में प्रकृति के रहस्यों को पता लगाने के लिए प्रतिपल उत्कण्ठित और प्रयत्नशील है। जहाँ, जो भी, जैसा भी उसे अजाना दीख पड़ता है वह सफलता-असफलता की चिन्ता किये बिना वहाँ कूद पड़ता है और व्यवस्थित/तर्कसम्मत खोज में समर्पित हो जाता है। धार्मिक साधना और वैज्ञानिक खोज दोनों की गुणवत्ता और तीव्रता समान है— लक्ष्य अलग हैं।

जैनदर्शन ने लोकरचना के लिए उत्तरदायी छह द्रव्य माने हैं। ये हैं— जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। इनमें से प्रथम पाँच अस्तिकाय हैं; काल अस्तिकाय नहीं है।

जीव अरूपी द्रव्य है। जानना/दिखना उसके मुख्य लक्षण हैं। वह सचेतन द्रव्य है। बाकी द्रव्य अचेतन हैं।

जीव को कई तरह से परिभाषित किया गया है।

जो चार प्राणों के द्वारा आज है, कल था, कल होगा वह जीव है।

पंचास्तिकाय की एक गाया है—

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं। सो जीवो पाणा पुण बलमिदियमाउ उस्सासो। —३०

जीव चेतना-संपन्न है। वह उपयोगमय है। उपयोग आत्मा के चैतन्य का परिणामन है। हम उसे दर्शन और ज्ञान की खिड़कियों में-से देख सकते हैं। जीव वह है जो सबको जानता है, सबको देखता है। जो सुख की इच्छा करता है। जो दुःख से भयभीत है। पंचास्तिकाय की गाथा है — जाणदि पस्सदि सव्वं दच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो । —१२/१।

ऊपर हमने द्रव्य शब्द का उल्लेख किया है। द्रव्य के लक्षण हैं :

सत्, उत्पादव्ययध्रौव्य-से-संयुक्ति, गुण-पर्याय का आश्रय।

द्रव्य का प्रथम लक्षण है 'होना'। दूसरा है; उत्पन्न होना, नष्ट होना, फिर भी बने रहना। तीसरा है; गुण और पर्याय का आश्रयस्थल होना। गाथा है—
दव्वंसल्लक्खणियं उत्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं । गुणपज्जयासयं वा जुं तुं भण्णाति
सव्वण्हू ॥ —पं. १०

जीव द्रव्य है, सहज ही ये सारी विशेषताएँ उसकी भी हैं।

जीव के दो भेद हैं—संसारी और मुक्त।

जो संसार में घूम रहे हैं वे हैं संसारी; जो इससे छूट गये हैं वे हैं मुक्त।

संसारी जीव छह प्रकार के हैं—पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक तथा त्रस। मुक्त जीवों का कोई भेद नहीं है।

पृथ्वी से ले कर वनस्पति तक के जीव एकेन्द्रिय हैं। इनके सिर्फ स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

पृथ्वी के चार प्रकार हैं—

पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, और पृथिवीजीव।

जल के भी चार भेद हैं : जल, जलकाय, जलकायिक, जलजीव।

इसी तरह अग्नि, वायु और वनस्पति के भी चार-चार भेद हैं।

इनमें से प्रत्येक के आरंभ के दो भेद निर्जीव और दो सजीव हैं।

जैनधर्म अहिसामूलक धर्म है। अहिसा उसके समस्त आचार-विचार की कसौटी है।

जैनदर्शन में जीवों की जो सूक्ष्मतर विवेचना हुई है उसका उद्देश्य अहिसा का अधिकतम परिपालन ही है।

तृतीय भेद ही एक ऐसा भेद है जहाँ हिसा की संभावना है। चतुर्थ भेद में हिसा की कोई संभावना नहीं है।

पृथ्वी को लें। मार्ग में पड़ी धूल आदि सामान्य पृथ्वी है। यह निर्जन्तुक है।

पृथ्वीकायिक जीव ने जिसे छोड़ दिया है वह पृथ्वीकाय है। पृथ्वीकाय

अर्थात् पृथ्वीजीव-द्वारा परित्यक्त शरीर। यह भी निर्जीव है। इसमें पृथ्वी है,

किन्तु पृथ्वीजीव अनुपस्थित हुआ है।

तीसरा भेद है पृथ्वीकायिक अर्थात् जिस पृथ्वीकाय को धारण कर जीव जी रहा है वह है पृथ्वीकायिक जीव ।

मोटीतौर पर हम इन तीन भेदों को ही देख पाते हैं; पृथ्वीजीव को नहीं देख पाते पाते । चतुर्थ भेद है पृथ्वीजीव । जब जीव विग्रहगति में होता है और पृथ्वीकाय की धारणा के लिए यात्रायित होता है तब हम उसे पृथ्वीजीव कहते हैं ।

‘विग्रह’ का अर्थ ‘शरीर’ है । जब जीव भवान्तर के लिए यात्रायित होता है और कर्मस्थिति के अनुरूप नियत पाता है कि उसे कहाँ/किस योनि में जन्म लेना है तब उसे विग्रहगति में यात्रायित जीव कहते हैं । विग्रहगतिक जीव भी तब तक पृथ्वीजीव नहीं है जब तक वह पृथ्वीकाय धारण नहीं कर लेता । वह पृथ्वीजीव की संभावना है । इस संभावना के कारण ही हम उसे पृथ्वीजीव कह सकते हैं । इसी तरह जलकायिक जीवों को समझना चाहिये ।

आन्दोलित, फैलाया हुआ, छाना हुआ जल सामान्य जल है ।

यह मात्र माध्यम है । जिसे जलकायिक जीवों ने छोड़ दिया है वह जलकाय है । इसे हम प्रासुक जल कहते हैं; जैसे उबाला हुआ पानी । जिस जल में जलजीव अवस्थित है वह जलकायिक है; और जब जलकाय को छोड़ कर जीव भवान्तर की प्रक्रिया में है तब वह जलजीव है ।

अब अग्निकायिक जीव को लें ।

इधर-उधर फैली, जल-सिंचित, या जिसका बहुभाग भस्म हो चुका है, या जो किंचित उष्ण है—वह सामान्य अग्नि है । अग्निजीव ने जिसे तलाक दे दिया है अर्थात् भस्म आदि अग्निकाय हैं । जिसमें अग्निजीव स्पन्दित है वह अग्निकायिक है और जो अग्निकाय में जन्मार्थ यात्रायित है वह है अग्निजीव ।

यहाँ सवाल उठ सकता है कि आग में जीव कैसे रह सकता है; वह तो वहाँ भस्म हो जाएगा ?

किन्तु आधुनिकतम वैज्ञानिक खोजों* ने यह साबित कर दिखाया है कि अग्निजीव होते हैं और ७०० अंश फारेनहाइट तापक्रम में पृथ्वीगर्भ की ८६०० फुट गहरी ज्वालामुखियों में जीवित रहते हैं ।

मैक्सिको की खाड़ी में जो अद्भुत ट्यूबवॉर्म मिले हैं उनकी कथा अचंभे में डालने वाली है । शनन ब्राउनली का ‘बिज़ारे बीस्ट्स ऑफ द एबीस’ आश्चर्य में डालने वाला लेख है । इसमें जो वैज्ञानिक तथ्य दिये गये हैं वे अग्निजीव के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं ।

* डिस्कव्हर / जुलाई १९८४/पृ. ७३/कॉलम २

अब हम वायु को लेंगे ।

ऐसी वायु जिसमें वायुजीव जन्म सकता है सामान्य वायु कहलाती है ।

वायुजीव द्वारा परित्यक्त, पंखे से विलोडित वायु आदि को वायुकाय कहेंगे ।

जो वायु वायुकायिक जीव से युक्त है उसे वायुकायिक कहेंगे और जो वायुकायिक जीव भवान्तर-की-प्रक्रिया/विग्रहगति में है उसे वायुजीव कहा जाएगा ।

यहीं स्थिति वनस्पति की है । गीली, छिन्न-भिन्न, मसली हुई बेलें आदि सामान्य वनस्पति हैं ।

सूखी वनस्पति जिसे वनस्पतिजीव ने छोड़ दिया है वनस्पतिकाय है; जिसमें वनस्पतिजीव ठहरा हुआ है वह वनस्पतिकायिक है और वनस्पतिकाय धारण करने के लिए प्रस्थित विग्रहगतिक जीव वनस्पतिजीव है ।
(पृथ्वी के छत्तीस भेद हैं; दे. पृ. २३)

जलकायिक जीवों के भेद काफी वैज्ञानिक और दिलचस्प है ।

ओस, हिम (बर्फ), कोहरा, मोटी बूंदें, छोटी बूंदें, शुद्ध जल, घन-जल ।

अग्निकायिक जीवों के भेद हैं—

अंगारे, ज्वाला, लौ, मुर्मुर, शुद्धाग्नि, अग्नि ।

वायुकायिक जीवों के प्रकार हैं—

वात, उद्भ्रम, उत्कलि, मण्डलि, गुंजा, महावायु, घनाकार, तनुवात, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ।

वात सामान्य वायु है ।

घूमती-घहराती-ऊपर उठती वायु उद्भ्रम है ।

लहरों-की-तरह उठती वायु उत्कलि है ।

पृथ्वी से चिपट कर घूमती वायु मण्डलि है ।

गुंजती वायु को गुंजा कहते हैं ।

वृक्षादि को उखाड़ देने वाली प्रचण्ड वायु महावायु है ।

तनुवातवलय/घनोदधिवातवलय की वायु घनाकार होती है ।

पंखे आदि की वायु और लोक को घेरने वाली वायु को तनुवात कहते हैं ।

हृदयस्थित वायु की संज्ञा प्राण है ।

गुदस्थित वायु अपान है ।

समान नाभिमण्डलवर्ती वायु का नाम है ।

कण्ठप्रदेशस्थित वायु को उदान कहते हैं ।

संपूर्ण शरीर में स्थित वायु व्यान है ।

हृदय से व्यान तक की वायुएँ शरीर से संबंधित हैं ।

वनस्पतिकायिक जीवों के प्रकार हैं—

प्रत्येक और साधारण अथवा अनन्तकाय ।

जिन वनस्पतियों का अधिपति/स्वामी एक ही है वे प्रत्येक काय वनस्पतियाँ हैं; सुपारी, नारियल आदि के वृक्ष इसी श्रेणी में आते हैं ।

जब एक जीव का शरीर अनन्तानन्त (अनन्त × अनन्त) जीवों का शरीर हो तो उसे अनन्तकाय/साधारण वनस्पति कहते हैं। 'गोम्मटसार' में इसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहा गया है। अनन्तकाय वनस्पति में अनगिनत निगोदिया जीव निवास करते हैं ।

इनमें अण्डर, आवास, पुलवि, बादर निगोद रूप बस्तियाँ (कॉलोनियाँ) होती हैं। जिनमें अनन्तकाय निगोदिया जीव रहते हैं ।

निगोदिया जीवों को सामान्य या साधारण कहते हैं ।

इन कॉलोनियों (उपनिवेशों) को एक रूपक द्वारा समझना चाहिये ।

स्कन्ध को विश्व मानें। अण्डर को देश। आवास को प्रदेश। पुलवि को नगर।

बादरनिगोद को मकान ।

दूसरा पौराणिक रूपक यों हो सकता है। स्कन्ध हुआ जम्बूद्वीप; अण्डर भरतक्षेत्र; आवास कोसल आदि; पुलवि बाराणसी आदि नगर; बादर निगोद नगरस्थित मकान ।

'निगोद' शब्द की व्युत्पत्ति से भी उक्त रूपक पर प्रकाश डाला जा सकता है ।

नि=नियत; गो=भूमि; द=देता है अर्थात् जो अनन्तानन्त जीवों को शरण देता है, स्वयं में उपनिविष्टित करता है वह है निगोद । निगोद सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति का शरीर है ।

इसे हम चीनी सन्दूक भी कह सकते हैं। चीनी सन्दूक बड़ा विचित्र होता है। उसे खोलते ही उसके अन्दर एक और सन्दूक, और इस दूसरे को खोलने पर फिर एक, तीसरे को खोलने पर फिर चौथा, चौथे को खोलने पर पाँचवाँ . . .

ठीक ऐसे ही स्थित है स्कन्ध में अण्डर, अण्डर में आवास, आवास में पुलवि, पुलवि में बादरनिगोद ।

वनस्पतियाँ बादर और सूक्ष्म द्विविध है। बादर का अर्थ है स्थूल ।

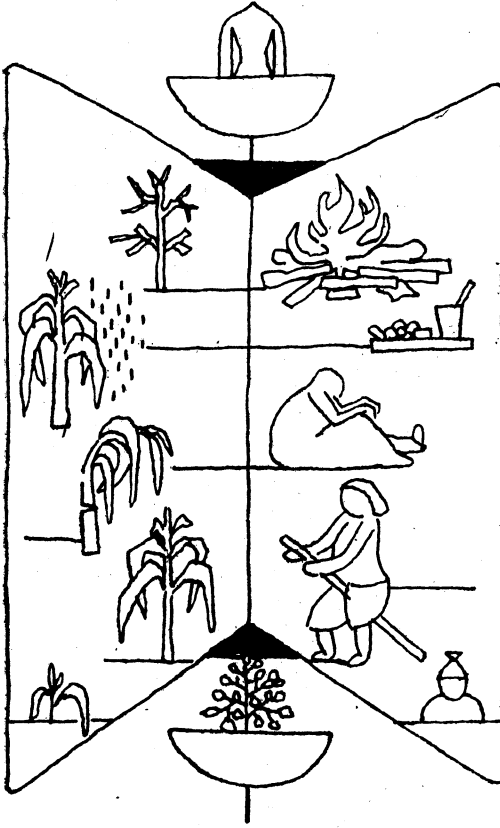
बादर वनस्पति के कुछ स्पष्ट भेद हैं—

जल में होने वाली हरी काई 'शैवाल' है ।

जमीन या ईंट पर लग जाने वाली काई 'पणक' है ।

वर्षा में कूड़े-कचरे पर छतरी के आकार की जो वनस्पति लग आती है वह 'किण्व' है ।

(शेष पृष्ठ ६९ पर)



यह वनस्पति भी जन्म लेती है,
यह मनुष्य भी जन्म लेता है।
यह वनस्पति भी बढ़ती है,
यह मनुष्य भी बढ़ता है।
यह वनस्पति भी चेतना-युक्त है,
यह मनुष्य भी चेतना-युक्त है।

-आचारांग सूत्र

से बेमि

इमं पि जातिधम्मयं, एयं पि जातिधम्मय
इमं पि बुद्धिधम्मयं, एयं पि बुद्धिधम्मयं
इमं पि चित्तमंतयं, एयं पि चित्तमंतयं
इमं पि छिण्णं मिलाति, एयं पि छिण्णं मिलाति
इमं पि आहारगं, एयं पि आहारगं
इमं पि अणितियं, एयं पि अणितियं
इमं पि असासयं, एयं पि असासयं
इमं पि चयोवचइयं, एयं पि चयोवचइयं
इमं पि विप्परिणामधम्मयं, एयं पि विप्परिणामधम्मयं ॥४५॥

में कहता हूँ

यह मनुष्य भी जन्म लेता है, यह वनस्पति भी जन्म लेती है
यह मनुष्य भी बढ़ता है, यह वनस्पति भी बढ़ती है
यह मनुष्य भी चेतना-युक्त है, यह वनस्पति भी चेतना-युक्त है
यह मनुष्य छिन्न होने पर म्लान हो जाता है,
यह वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान हो जाती है
यह मनुष्य भी आहार करता है, यह वनस्पति भी आहार करती है
यह मनुष्य-शरीर भी अनित्य^१ है, यह वनस्पति-शरीर भी अनित्य है
यह मनुष्य-शरीर भी आहार से उपचित^२ होता है, आहार के अभाव में
अपचित^३ क्षीण/दुर्बल होता है
वनस्पति का यह शरीर भी इसी प्रकार उपचित-अपचित होता है
यह मनुष्य-शरीर भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होता है
यह वनस्पति-शरीर भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होता है।

—आचारांग सूत्र, पंचम उद्देशक, सूत्र 45

१. भंगुर, नाशवान; पाठान्तर अणिच्चयं। २. विकसित। ३. नष्ट, कुश, क्षीण।

प्लांट्स

एज वी हैव ऑलरेडी सीन, आर फार मोर लाइक पीपुल देन मोस्ट

पीपुल रिएलाइज़;

दे हैव सेप, वी हैव ब्लड;

दे हैव क्लोरोफिल, वी हैव हीमोग्लोबिन;

दे हैव क्लोरोप्लास्ट्स, वी हैव आइज़;

बोथ हैव ए पल्स;

बोथ हैव सर्कोडिन रिड्म्स;

बोथ प्रोड्यूस हार्मोन्स व्हिच इन मेनी केसेज़ आर वेरी सिमलर;

एण्ड बोथ रिप्रोड्यूस बाय मीन्स ऑफ सेक्स्युअल प्रोसेसेज व्हिच आर

कम्पेरेबल इन देअर कॉम्लेक्सिटी.

बोथ गिव बर्थ, देअर ऑफस्प्रिंज गो थ्रू द पीरियड ऑफ चाइल्डहूड

(ऑफन माकर्ड बाय क्लीअरली जुव्हेनाइल कैरेक्टरिस्टिक्स), थ्रू प्यूबर्टी टू

मैच्युरिटी, मेट, शो, ऑब्जिक्ट्स साइन्स ऑफ एजिंग एण्ड, इन टाइम,

डाइ.

—द प्राइवेट लाइफ ऑफ प्लांट्स/रोजर ग्राउंड्स/पृ. 29

पेड़-पौधे

जैसा कि हम देख चके हैं

मनुष्यों-जैसे कुछ अधिक ही हैं

उससे कहीं अधिक जितना वे महसूसते हैं।

उनमें जीवन-रस है, हममें रुधिर है;

उनमें पर्णहरित है, हममें हीमोग्लोबिन है;

उनमें प्रकाश-संवेदना है, हमारे पास आँखें हैं;

नाड़ी दोनों की है; स्पन्दन दोनों में है;

दोनों में चक्राकार लय है;

दोनों हार्मोन्स उत्पन्न करते हैं, जो कई मामलों में बहुत समान होते हैं।

दोनों यौन प्रक्रिया में प्रजनन करते हैं, जो अपनी जटिलता में तुलनीय है।

दोनों जन्म देते हैं/प्रसव करते हैं, दोनों की संतानें शैशव से गुज़रती हैं

(प्रायः स्पष्ट केशोर चिह्नों में लक्षित होती हैं)

तरुणाई से प्रौढ़ता तक

जीवन-साथी वयःसंधियों को स्पष्टतया प्रदर्शित करता है

और समय होने पर

दुनिया से बिदा हो जाता है।

पृथ्वीकायिक का वेदना-बोध

से बेमि

अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे, अप्पेगे पादमब्भे, अप्पेगे पादमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे, अप्पेगे जंगमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे, अप्पेगे ऊरमब्भे, अप्पेगे ऊरमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे, अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उदरमब्भे, अप्पेगे उदरमच्छे, अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्टिमब्भे, अप्पेगे पिट्टिमच्छे, अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हियमब्भे, अप्पेगे हियमच्छे, अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे, अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे, अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे, अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे, अप्पेगे होट्टमब्भे, अप्पेगे होट्टमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे, अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे, अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे; अप्पेगे गंडमच्छे, अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे, अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे, अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे ।

अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

(जैसे कोई जन्मान्ध व्यक्ति को (मूसल-भाला आदि से) भेदे, चोट करे या तलवार आदि से छेदन करे, उसे जैसी पीड़ा की अनुभूति होती है, वैसी ही पीड़ा पृथ्वी कायिक जीवों को होती है ।)

जैसे कोई किसी के पैर में, टखने पर, जंघा, घुटने, उर, कटि, नाभि, उदर, पार्श्व-पसली पर, पीठ, छाती, हृदय, स्तन, कन्धे, भुजा, हाथ, अँगुली, नख, ग्रीवा (गर्दन), ठुड्डी, होठ, दाँत, जीभ, तालु, गले, कपोल, कान, नाक, आँख, भौंह, ललाट, और सिर का (शस्त्र से) छेदन-भेदन करे, (तब उसे जैसी पीड़ा होती है, वैसी ही पीड़ा पृथ्वीकायिक जीवों को होती है) ।

जैसे कोई किसी को गहरी चोट मार कर मूर्च्छित कर दे, या प्राण-वियोजन ही कर दे तब उसे जैसी कष्टानुभूति होती है, वैसी ही पृथ्वीकायिक जीवों की वेदना समझनी चाहिये ।

—आचारांग सूत्र/ प्र.अ./ द्वि.उ./सूत्र 15

रांगे (टिन) की अनुक्रिया

एक बार रॉयल सोसायटी के सेक्रेटरी सर फोस्टर माइकेल विख्यात वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु की प्रयोगशाला देखने गये। बसु ने कैम्ब्रिज के सेवानिवृत्त प्रोफेसर को अपने कुछ आलेखन (रेकर्डिंग) दिखाये।

फोस्टर ने हँसते हुए कहा—‘यहाँ आइये बसु और बताइये कि इस वक्र (कर्व्ह) में क्या नवीनता है? हम तो इसे कम-से-कम विगत आधी सदी से देखते आये हैं।’

वैज्ञानिक बसु ने बड़े शान्त भाव से पूछा—‘किन्तु आप क्या सोचते हैं; यह वक्र किससे सम्बन्धित है?’

फोस्टर ने परीक्षण की मुद्रा में कहा—‘क्यों, क्या वास्तव में यह एक पेशी अनुक्रिया वक्र (ए कर्व्ह ऑफ मसल रेस्पॉन्स) नहीं है?’

अपनी खोजती भूरी आँखों की गहराइयों में-से प्रोफेसर की ओर देखते हुए बसु ने अविचल चित्त से कहा—‘क्षमा करें, किन्तु यह धात्विक रांगे (टिन) की अनुक्रिया है’।

फोस्टर भौंक्के रह गये। अपनी कुर्सी पर से उछलते हुए वे चिल्लाये ‘क्या? रांगा (टिन); आपने यही कहा न टिन?’

—मई 1901

पृथिवी के छत्तीस भेद हैं

१. मिट्टी; २. रेत; ३. कंकड़; ४. पत्थर; ५. शिला; ६. नमक; ७. लोहा; ९. ताँबा; ९. रांगा; १०. सीसा; ११. चाँदी; १२. सोना; १३. हीरा; १४. हरताल; १५. हिंगुल; १६. मनःशिला; १७. गेरू; १८. तूतिया; १९. अंजन; २०. प्रवाल; २१. अभ्रक; २२. गोमेद; २३. राजवर्तमणि; २४. पुलकमणि; २५. स्फटिकमणि; २६. पद्म-रागमणि; २७. वैडूर्यमणि; २८. चन्द्रकान्तमणि; २९. जलकान्त; ३०. सूर्यकान्त; ३१. गैरिकमणि; ३२. चन्दनमणि; ३३. मरकतमणि; ३४. पुष्पराममणि; ३५. नीलमणि; ३६. विद्रुममणि। इनमें मेरुपर्वत आदि सभी भेद भी सम्मिलित हो जाते हैं।

○

जैनागम और वनस्पतियाँ

आज विज्ञान-जगत् में वनस्पति-विज्ञान जीव-विज्ञान की एक प्रमुख शाखा बन गयी है, जिसने यह सिद्ध कर दिखाया है कि वनस्पतियों में भी आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ जैसी प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। जैनागम भी वनस्पतियों में यह सब मानता है, जिसे आष विज्ञान ने प्रत्यक्ष सिद्ध किया है। 'पन्नवणा' आदि जैनागमों में वनस्पति-काय में एकेन्द्रिय से ले कर पंचेन्द्रिय तक के आहार का उल्लेख है।

जैन दर्शन एक मौलिक दर्शन है और विश्व के अन्य दर्शनों से यह अपने में अनेक विशेषताएँ रखता है। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व जब वर्तमान युग के समान न वैज्ञानिक यन्त्र थे और न प्रयोगशालाएँ थीं, तब जैन दर्शन ने ऐसे अनेक विलक्षण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो तत्कालीन किसी भी अन्य दर्शन में विद्यमान नहीं थे; फलतः अन्य दर्शनकारों की ओर से उन सिद्धान्तों का विरोध/खण्डन तब तक होता रहा जब तक विज्ञान ने विकसित हो कर उन सिद्धान्तों का रहस्योद्घाटन कर उनकी सत्यता को प्रमाणित नहीं कर दिया। जैनधर्म के उन्हीं विलक्षण सिद्धान्तों में से 'वनस्पति-विज्ञान' भी एक है। जैन दर्शन वनस्पति को सजीव तो कहता ही है साथ ही उसमें आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि वृत्तियाँ भी मानता है। जैन आगमों में कथित इस सच्चाई को आज विज्ञान ने अपने यन्त्रों और प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है।

वनस्पति सजीव है इसे श्रीजगदीशचन्द्र बसु ने सन् १९२० में यन्त्रों की सहायता से सिद्ध कर दिया। बसु ने सिद्ध किया कि जीवित प्राणियों में पाये जाने वाले गुण सचेतनता, संवेदनशीलता, शारीरिक गठन, भोजन, संवर्धन, श्वसन, प्रजनन, अनुकूलन, विसर्जन, मरण आदि समस्त गुण वनस्पति में भी विद्यमान हैं। ये गुण निर्जीव पदार्थों में बिल्कुल नहीं पाये जाते, अतः वनस्पति निर्जीव पदार्थ न हो कर सजीव पदार्थ है। आज विज्ञान जगत् में वनस्पति-विज्ञान जीव-विज्ञान की एक प्रमुख शाखा बन गया है, जिसने यह सिद्ध कर दिखाया है कि वनस्पति में आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि होते हैं। जैन दर्शन भी वनस्पतियों में वह सब मानता है, जो विज्ञान जगत् में आज प्रत्यक्ष सिद्ध हुआ है।

'पन्नवणा' आदि जैनागमों में वनस्पति-काय में एकेन्द्रिय से ले कर पंचेन्द्रिय तक का आहार माना है जो प्रमाणों से सिद्ध है।

एक तुरन्त-के-तोड़े डण्डल-सहित सफेद गुलाब को, या अन्य किसी फूल को लाल पानी में डण्डल डुबो कर रखिये। थोड़ी देर में फूल की पंखुड़ियों पर लाल

रंग जगह-जगह दिखायी देगा। यदि फूल सजीव न होता तो लाल रंग का जलपान नहीं कर सकता।

वनस्पति अपनी जड़ों से मिट्टी-पानी का, पत्तों, शाखाओं आदि से ऊष्मा और वायु का आहार लेती है। वनस्पतियाँ वनस्पतियों का भी आहार करती हैं। ये जिन वृक्षों पर उगती है उनमें अपनी जड़ें धँसा देती हैं और उनका शोषण कर अपना भोजन बनाती हैं। अमरबेल एक ऐसी ही वनस्पति है।

वनस्पतियाँ स्थावर जीवों के शरीर का आहार तो करती ही हैं, परन्तु हलते-चलते जीव-जन्तुओं, कीट-पतंगों, पशु-पक्षियों तथा मानवों का आहार करने वाली भी अनेक वनस्पतियाँ हैं। वनस्पति-विज्ञान में ऐसी वनस्पतियों को 'मांसाहारी वनस्पतियाँ' कहा है।

मांसाहारी वनस्पतियों के सर्वाधिक जंगल आस्ट्रेलिया में हैं। इन जंगलों को पार करते हुए मनुष्य इन विचित्र वृक्षों को देखने के लिए जैसे ही इनके पास जाते हैं इन वृक्षों की डालियाँ और जटाएँ इन मनुष्यों को अपनी लपेट में जकड़ लेती हैं, जिससे छुटकारा पाना सहज कार्य नहीं है; फलतः मनुष्य रोता, चिल्लाता, गुकारता है और अन्त में दम तोड़ देता है।

तस्मानिया के पश्चिमी वनों में 'होरिर्जिटल स्क्रब' नामक वृक्ष होता है। यह आगन्तुक पशु-पक्षी और मनुष्य को अपने क्रूर पंजों का शिकार बना लेता है। यहाँ तक कि यदि कोई घुड़सवार भी इसके पास से गुजरे तो यह उसे भी अपना आहार बना लेता है।

कीट-भक्षी पौधों की अनेक जातियाँ हैं। 'युट्री कुलेरियड' इसी जाति का एक पौधा है। यह उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी आफ्रिका, न्यूजीलैण्ड, भारत आदि देशों में पाया जाता है। यह स्थिर पानी में उगता है। इसकी पत्तियाँ सुई के आकार की होती हैं और पानी पर तैरा करती हैं। पत्तियों के बीच में छोटे-छोटे हरे रंग के गुब्बारे के आकार के फूले अंग रहते हैं। पौधा इन्हीं गुब्बारों से कीड़ों को पकड़ता है। प्रत्येक गुब्बारा पानी से भरा रहता है और उसके मुँह पर एक छोटा-सा छेद रहता है। इस छेद पर एक कपाट रहता है, जो केवल अन्दर की ओर ही खुलता है। कपाट पर बाहर की ओर महीन बाल होते हैं। ये बाल सचेतन होते हैं और इनमें हमारी त्वचा की भाँति स्पर्श अनुभव करने की शक्ति होती है। जब कोई कीड़ा पानी में तैरता-तैरता गुब्बारे के पास पहुँचता है और कपाट के बालों को छूता है तो कपाट अन्दर की ओर तुरन्त खुल जाता है जिससे कीड़ा गुब्बारे के भीतर गिर जाता है। कीड़े के भीतर पड़ते ही कपाट फिर ऊपर उठ कर गुब्बारे का मुँह बन्द कर देता है। इस प्रकार बेचारा कीड़ा गुब्बारे में बन्द हो जाता है। गुब्बारे के भीतर दीवारों से एक रस निकलता है जो कीड़े के

मांस को घुला देता है। इस घोल को गुब्बारे के भीतर की दीवारों के रोएँ चूस लेते हैं।

‘वटर-वार्ट’ नामक पौधा भी कीड़ों को पकड़ने और खाने की कला में प्रवीण होता है। वटर वार्ट के फूल बहुत सुन्दर होते हैं। संपर्क में आने वाला बेचारा कीट यह कल्पना भी नहीं कर पाता कि इतने रंग-बिरंगे सुन्दर फूलों वाला यह पौधा प्राणघातक भी हो सकता है। इस पौधे का पत्ता पूर्ण रूप से विषैला होता है, जिस पर एक चिपचिपा लेप रहता है। यह लेप स्वाद में मीठा होता है, परन्तु यह मीठा रस ही कीटों के लिए मारक विष है। जब कीड़ा इसके रंग-बिरंगे सुन्दर फूलों से आकृष्ट हो इसके पत्ते के पास आता है और पत्ते को छू जाता है तो वह चिपचिपा पदार्थ उनके पैरों को मजबूती से जकड़ लेता है; फिर ज्यों-ज्यों कीड़ा स्वयं को छुड़ाने का प्रयत्न करता है, त्यों-त्यों पत्ता ऊपर से अन्दर की ओर मुड़ता जाता है और वह एक जीवित समाधि में बन्द हो जाता है। पौधा फिर उसे अपने अन्दर पचा लेता है।

आफ्रिका महाद्वीप तथा मेडागास्कर द्वीप के सघन जंगलों में कहीं-कहीं मानव-भक्षी वृक्ष मिलते हैं, जो मनुष्यों और जंगली जानवरों को अपना शिकार बनाते हैं। कहते हैं, एक मनुष्य-भक्षी वृक्ष की ऊँचाई पचास फुट तक होती है। इस विशाल और भयानक लगने वाले वृक्ष की अनेक शाखाओं के अग्रभाग में थाली के आकार के बड़े-बड़े फूल लगे रहते हैं। इसकी शाखाएँ एक-दो फुट लम्बे काँटों-से-भरी रहती हैं।

जब भी अँधेरे में कोई जानवर या मनुष्य असावधान हो कर उस वृक्ष के पास से गुज़रता है, तब वृक्ष की काँटदार शाखाएँ अपने शिकार को चारों ओर से घेर लेती हैं। जब काँटे शरीर में घुस कर खून चूस लेते हैं और बाहर निकल जाते हैं; तब वृक्ष की शाखाएँ निर्जीव शरीर को छोड़ देती हैं। शिकार का खून चूस लेने पर फूलों का आकार बढ़ जाता है; किन्तु कई दिनों बाद वे फिर असली हालत में आ जाते हैं। इस प्रकार वृक्ष के नीचे कंकालों का ढेर लग जाता है। कुछ वर्ष पहले साइकिल द्वारा विश्व-भ्रमण करने वाले श्री मिश्रीलाल जायसवाल ने युगाण्डा के भयानक जंगल में मनुष्य-भक्षी वृक्ष की शाखाओं में फँसे हुए एक बारह सिंघे को स्वयं अपनी आँखों से देखा था।

रैने हैटट्रम्पट, नेपन्थीज, जीन्सलापोट्रिया, बीनसपलाईट्रिप, ड्रासरा, पिचर प्लान्ट आदि अन्य मांसाहारी पौधे भी कीड़ों का शिकार करने व उन्हें पकड़ने में बड़े निष्णात होते हैं।

भय-सुरक्षा : जिस प्रकार आपत्ति आने पर मनुष्य भयभीत होता है, उससे अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार वनस्पति के किसी अंग पर प्रहार करने से वह थर-थर कांपने लगती है। उसके रोएँ खड़े हो जाते हैं। 'लाजवन्ती' (छुईमुई) के पौधे के किसी अंग को यदि अँगुली छू जाए तो वह भयभीत हो जाता है और रक्षा के लिए सारे शरीर की पत्तियों को सिकोड़ कर अपने सब अंग ढँक लेता है। कश्मीर में उत्पन्न 'जवागल' वनस्पति हथेली पर रखते ही ज्वर-पीड़ित मनुष्य की तरह कांपने लगती है।

जिस प्रकार पशु-पक्षी और मनुष्य अपने शत्रुओं से बचने के लिए विविध उपाय काम में लेते हैं, ठीक उसी प्रकार पौधे भी अपने शत्रुओं से बचने तथा अपनी सुरक्षा के लिए विविध उपाय काम में लेते हैं। बिच्छू जाति का पौधा अपनी रक्षा पत्तियों के रोओं से करता है। इन पौधों को छूने पर, खतरा पहुँचाने वाले व्यक्ति की खाल में ये रोएँ चुभ कर एक प्रकार का विष फेंकते हैं, जो जलन पैदा करता है। उससे असह्य पीड़ा होती है; फलतः व्यक्ति उसे छोड़ देता है और पौधा खतरे से छुटकारा पा जाता है। चमचमी वनस्पति को, जो प्रायः जलाशय के किनारे होती है; छूने से, छूने वाले व्यक्ति के सारे शरीर में खुजली चलने लगती है; अतः व्यक्ति इससे दूर रहते हैं और यह खतरे से बची रहती है। काक-नुरई अपनी रक्षा दुर्गंध से करती है। विषैली गैस द्वारा अपनी रक्षा करने वाला पौधा है 'उपस'। यह कँटीला पौधा जावा के भीतरी भागों में घने जंगलों में मिलता है। इसमें से कपूर-जैसा लसदार द्रव्य निकलता है; जो पोटेशियम साइनाइड के समान अत्यन्त विषैला होता है। यह जहरीली गैस भी छोड़ता है जिससे चारों ओर का वायुमण्डल विषाक्त हो जाता है। इस गैस का दुष्प्रभाव पन्द्रह मील तक पड़ता है। मनुष्य इसे दूर से ही नमस्कार कर निकल जाते हैं। सली बीज और मलाया के घने जंगलों में और बोटानिकल गार्डन में आज भी ऐसे वृक्ष देखे जाते हैं।

मैथुन : वर्तमान वनस्पति विज्ञान में वनस्पति में नर-मादा तो माना ही है तथा इनके संयोग से प्रजनन भी माना है। पपीता आदि वनस्पतियाँ इसकी प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

परिग्रह : वट, नीम आदि वृक्ष वर्षाऋतु में अपनी जड़ों में भोजन इकट्ठा कर लेते हैं, जिसका उपयोग ग्रीष्म ऋतु आने पर करके फलते-फूलते हैं।

दुःख-सुख : जिस प्रकार मनुष्य, पशु आदि अन्य प्राणी दुःखित और हर्षित होते हैं, उसी प्रकार वनस्पतियाँ भी दुःखित और हर्षित होती हैं। सूडान और वेस्ट इंडीज में एक ऐसा वृक्ष पाया जाता है, जिसमें दिन में बड़ी अद्भुत प्रकार की राग-रागिनियाँ निकलती रहती हैं और रात में इन्हीं वृक्षों में-से रोना-धोना आरंभ होता है, जिससे कभी-कभी यात्री यह समझ बैठता है कि निकट ही कहीं कोई ऐसा परिवार है, जिसमें कोई मर गया है और सब बैठे रो-सिसक रहे हैं।

क्रोध : मनुष्य, और पशु की भाँति वनस्पतियाँ भी क्रोध और रोष करती हैं। जिस प्रकार बर्र आदि मक्खियों के छत्ते के पास कोई व्यक्ति पहुँच जाए तो ये मक्खियाँ रुष्ट हो कर डंक मारने लगती हैं। इनके डंक मारने से तीव्र पीड़ा होती है, जो तीन-चार दिन तक चलती रहती है। इसी प्रकार क्वीन्स और न्यू साउथ वेल्स में एक ऐसा वृक्ष पाया जाता है जो अपने पास आने वाले व्यक्ति को डंक मारता है। इसे 'टच मी नॉट' अर्थात् मुझे-न-छुओ या डंक मारने वाला वृक्ष कहा जाता है।

इन वृक्षों पर इनके आकार-प्रकार के अनुसार बड़े नुकीले और तेज धारवाले कटि होते हैं। इसके अलावा इस वृक्ष की काफी चौड़ी, बारह इंच लम्बी, खूब घनी और पान के आकार की पत्तियाँ होती हैं, जिन पर बाल के समान लम्बे रोएँ होते हैं। अगर कोई व्यक्ति इसके पास पहुँच जाए तो वे पत्तियाँ उस व्यक्ति से चिपक जाती हैं और डंक मारने लगती हैं। डंक मारने की पीड़ा बड़ी मर्यान्तक होती है, यदि तुरन्त ही कोई दवा न दी जाए तो यह पीड़ा चार दिनों तक लगातार चलती है।

मान : अपने अहं के विस्तार, उत्कर्ष, या मान की भूख भी वनस्पति में अन्य प्राणियों के समान ही होती है। विस्तार के भूखे वृक्षों में से 'वट' भी एक है। यह अपनी डालियों से शाखाएँ फेंकता है, जो भूमि पर अपने पैर जमा कर तने और जड़ का रूप ले लेती हैं। इस प्रकार बरगद अपना विस्तार करता हुआ आगे-से-आगे बढ़ता जाता है। कलकत्ते के बोटैनिकल बाग में खड़े बरगद के पाँच सौ तने हैं। बरगद का यह राई से भी छोटा बीज आज तीन हजार फुट की परिधि में विस्तार कर अपने उत्कर्ष का प्रदर्शन कर रहा है।

माया : जिस प्रकार कुछ मनुष्य पहले तो भोले-भाले बन कर किसी के यहाँ जम जाते हैं, फिर धीरे-धीरे अपना माया-जाल फैलाते हैं और अपने आश्रयदाता के व्यवसाय को छीन कर स्वयं कमाने लगते हैं, फलने-फूलने लगते हैं; इसी प्रकार कुछ वनस्पतियाँ कपटपूर्ण व्यवहार में बड़ी निपुण होती हैं; जैसे अमरबेल आदि। घटपर्णी का पौधा अपने घड़े से फल के पास मधुर रस छोड़ता है, जिससे आकृष्ट हो जो भी कीट-पतंगे आते हैं, उन्हें झट अपने पुष्प-घट में पकड़ कर चट कर जाता है।

लोभ : लोभी मनुष्य के समान वनस्पतियाँ भी लोभ के वशीभूत हो कर अपना भोजन अपनी जड़ों में संचित कर लेती हैं; जिसका उपयोग ग्रीष्म ऋतु में जब भोजन की कमी होती है, करती हैं—आलू, शकरकंद आदि ऐसे ही पौधे हैं।

इस प्रकार जैनागम में उल्लिखित वनस्पति-विषयक इन्द्रियाँ, पर्याप्ति, लेश्याएँ, ज्ञान आदि से समन्वित समस्त सिद्धान्तों को विज्ञान ने आज सत्य सिद्ध कर दिया है; जैन समाज को चाहिये कि इन सारे तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रकाश में लाये। □

यद्यपि १२००० जीवाश्म कीट-जातियों का वर्गीकरण और नामकरण किया जा चुका है तथापि यह एक अंशभाग है उन कीट-जातियों का जो अभी जीवित रही हैं और बिना अश्मीभूत हुए लुप्त हो गयी हैं। वैज्ञानिकों ने अब तक ७.५० लाख कीट-जातियों का वर्गीकरण और नामकरण संपन्न किया है।

शायद यह कथन बड़ा अटपटा लगेगा कि यदि समस्त कीटों को धरती पर से एकबारगी अनुपस्थित कर दिया जाए तो न कहीं कोई पुष्प होगा, न बीज, न फल, न वन। अभी भी हमारे ग्रह (प्लेनेट) के असली मालिक ये कीट ही हैं; मनुष्य ने तो इनकी व्यक्तिगत जायदाद पर जबरन कब्जा कर लिया है।

एक व्यापक गलतफहमी यह है कि यदि कीड़े-मकोड़े न हों तो हम अपने लिए अधिक और अच्छी फसलें पैदा कर सकते हैं। वास्तव में यह हमारी सुस्ती पर पर्दा डालने की एक सस्ती और भद्दी कोशिश है। असलियत यह है कि भारत में कीड़ों-मकोड़ों से होने वाला नुकसान अमेरिका को उनसे होने वाले नुकसान की तुलना में काफी कम है। कीड़े-मकोड़े भारत और अमेरिका में मनुष्य की जो भलाई करते हैं, वह सारी दुनिया के कीड़ों द्वारा पहुँचायी जा सकने वाली हानि से बहुत अधिक है। कीट-मनुष्य की हिस्सेदारी की जो बैलेंस-शीट बनती है, उसमें मनुष्य कीट का कर्जदार ठहरता है।

प्रत्येक मानव-मस्तिष्क में लगभग दस अरब (१०,०००,०००,०००) स्नायु-कोशिकाएँ होती हैं और कदाचित् इस संस्था की तीन या चार गुना सहायक (ग्लिअल) कोशिकाएँ होती हैं। प्रत्येक स्नायु-कोशिका में दीर्घ-सूक्ष्म शाखा-बिन्दु होते हैं, जिन्हें पार्श्वतन्तु (डेण्ड्राइट्स) कहा जाता है। संभवतः ये वृक्ष की उन डालियों की तरह-के होते हैं जो हज़ारों-हज़ार टहनियों तक जाती हैं। ये सारी एक स्नायु-कोशिका से संबद्ध होती हैं।

हमारे शरीर में लगभग ६०० अरब (६००००००००००००) कोशिकाएँ हैं। ये सभी कोशिकाएँ इतनी महीन हैं कि इन्हें देखने के लिए एक शक्तिशाली सूक्ष्म वीक्षण-यन्त्र की अपेक्षा होती है तथा इनके भीतर झाँकने के लिए एक सूक्ष्मतम सूक्ष्मवीक्षण-यन्त्र की ज़रूरत पड़ती है। छोटी-से-छोटी कोशिका की लम्बाई-चौड़ाई लग-

कतरनें

भग १/२०० मिलीमीटर होती है, जो कि कुछ मस्तिष्क-कोशिकाओं का परिमाण है और बड़ी-से-बड़ी कोशिका १/४ मिलीमीटर लम्बी-चौड़ी होती है, जो डिम्बाणु-कोशिकाओं का परिमाण है।

हमारे समग्र नाड़ी-तन्त्र में तन्त्रिका-कोशिकाओं (न्यूरोन्स) की संख्या लगभग १० खरब है।

एक इंच जितने स्थान में ३००० लाल कणिकाओं का समावेश हो जाता है। रक्त की एक छोटी-सी बूंद में, जो लगभग एक घन मिली मीटर आयतन वाली होती है, ५०००००० (पचास लाख) लाल कणिकाओं का समावेश हो जाता है। प्रति सेकंड ३० लाख कणिकाएँ नष्ट होती हैं और इतनी ही संख्या में नयी कणिकाएँ पैदा हो जाती हैं।

हमारे शरीर में अनगिनत रसायन हैं। वैज्ञानिकों ने खोज की है कि व्यक्ति जो सोचता या चिन्तन करता है उसके रसायन सारे शरीर में जमा हो जाते हैं। एक नख में पचास प्रकार के रसायन हैं। हमारे एक बाल में सैकड़ों किस्म के रसायन हैं। सिर के एक बाल में वे सारे रसायन हैं, जो व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देते हैं। सारा शरीर रसायनों से भरा पड़ा है। यकृत शरीर का सबसे बड़ा रासायनिक कारखाना है, जो लगभग ५०० प्रकार के विविध कार्य संपन्न करता है।

अमेरिका के अर्कैडिया विश्वविद्यालय के एक वैज्ञानिक ने कवचहीन शंख-शिपियों की कुछ बड़ी रोचक प्रजातियों का पता लगाया है। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि इनमें प्रकाश-संश्लेषण-प्रक्रिया की क्षमता पायी गयी है, जो अब तक वनस्पति-जगत् का एकाधिकार समझा जाता था। पर्णहरित या क्लोरोफिल इनके पाचक मण्डल में पाया जाता है, जिसकी सहायता से ये जल और कार्बन-डाइ-आक्साइड को धूप की उपस्थिति में कार्बोहाइड्रेट में बदल देती हैं और इस प्रकार ये हवा से, जिसमें कार्बन-डाइ-आक्साइड और नमी के रूप में जल दोनों होते हैं, अपना भोजन प्राप्त करती हैं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि पूर्व भारत के हाथी उत्तम, मध्य भारत के मध्यम, और सौराष्ट्र के कनिष्ठ होते हैं। आज सौराष्ट्र में एक भी हाथी नहीं

है। हाथी प्रतिदिन ४०० रतल घास या चारा या हरी वृक्ष-शाखाएँ खाता है; सोचिये, ऐसे हाथियों के दलों को निभाने वाला सौराष्ट्र कभी कितना हरा-भरा रहा होगा! आज पावागढ़ में एक भी हाथी नहीं है।

आस्ट्रेलिया में ६० फुट लम्बी छलाईंग भरने वाला कंगारू नामक जन्तु रहता है। अब चूँकि इसका चर्म पोशाख बनाने के काम में आने लगा है अतः वहाँ की सरकार को उसकी रक्षा के लिए कानून बनाना पड़ा है।

पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए वृक्षों का विशेष महत्त्व है, खास कर शहरी इलाकों में। व्यस्त सड़कों पर यातायात के शोर को पेड़ लगा कर कम किया जा सकता है। शोर कम करने के अन्य तरीकों की अपेक्षा पेड़ लगाना अधिक लाभदायक और कम खर्चीला है। यह देखा गया है कि एक पंक्ति में रोपे गये पेड़ों की अपेक्षा झुरमुटों में लघुवनों के रूप में घने रोपे गये पेड़ शोर को कम करने में अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। बड़े शहरों में वाहनों से उठने वाली धूल और धुआँ पर्यावरण को बेहद दूषित कर देते हैं। घने-बड़े पत्तों वाले और वे पेड़ जिनकी खूब शाखाएँ फूटती हैं तथा जो अपने विस्तृत शाखा-वितान से बड़ी छतरी बना देते हैं, पर्यावरण की धूल और धुएँ को अपने ऊपर रोक लेते हैं। वे प्रकृति का बड़ा वरदान हैं।

जब अमेरिका का कोई अता-पता नहीं था तब वहाँ लम्बी पूँछ वाले कबूतरों की टोलियाँ आकाश में उड़ा करती थीं। कई बार तो सुबह-से-दुपहर तक उड़ने वाले, कबूतरों के झुण्ड आकाश में छा कर अँधेरा कर देते थे। वे खूब सघन होते थे। गोरे आये और उन्होंने ३० फुट लम्बे और १० फुट चौड़े असंख्य जाल वहाँ बिछा दिये जिनमें करोड़ों कबूतर फँस और मर गये। आज वहाँ एक भी कबूतर नहीं है।

अफ्रीका की नदियों में जलघोड़े (हिपोपोटेमस) होते हैं, जो नदी के तल में डोलते रहते हैं जिससे तलवर्ती कीचड़ आन्दोलित होता रहता है और घोल के रूप में पानी के साथ बह जाता है। इस प्राकृतिक प्रक्रिया से नदियाँ आपोआप गहरी बनी रहती हैं। आदमी को जलघोड़ों के शिकार का खल्ल सवार हुआ, अतः अब इनकी संख्या इतनी घट गयी है कि नदीतल में खूब कीच-कईम जमा हो गया है। नदियाँ उथली हो गयी हैं परिणाम-स्वरूप अब जब बाढ़ें आती हैं तब सैकड़ों तटवर्ती गाँव डूब जाते हैं। □□



जैसे राजहंस निरवारे दूध-जलकों

जैसे करवत^१ एक काठ^२ बीच खण्ड करे,
 जैसे राजहंस निरवारे^३ दूध-जलकों।
 तैसे भेदज्ञान निज भेदक^४ शक्ति^५ सेती,^६
 भिन्न भिन्न करे चिदानन्द^७ पुद्गलकों ॥
 अवधिको^८ धावे^९ मनपर्येकी^{१०} अवस्था पावे,
 उमगिके^{११} आवे परमावधि^{१२} के थलकों।
 याही^{१३} भाँति पूरण सरूप^{१४} को उदोत^{१५} धरे,
 करे प्रतिबिंबित पदारथ^{१६} सकलकों ॥

—बनारसीदास

१. लकड़ी चीरने का आरा। २. काष्ठ लकड़ी। ३. अलग-अलग करता है।
४. भिन्न करने वाली। ५. शक्ति। ६. द्वारा। ७. आत्मतत्त्व को।
८. अवधिज्ञान - वह ज्ञान जो इन्द्रियों की सहायता के बिना पदार्थों को द्रव्य, क्षेत्र, काल की मर्यादा में साफ-साफ और निःशक जानता है। ९. की ओर बढ़ता है।
१०. मनःपर्ययज्ञान - वह ज्ञान जो किसी की सहायता के बगैर ही अन्य पुरुष के मन में अवस्थित रूपी पदार्थों को स्पष्टरूप में सि जानता है। ११. उमगित हो कर।
१२. केवलज्ञान, मोक्ष। १३. इस। १४. स्वरूप, निजता। १५. उद्योत, प्रकाश, निर्मलता। १६. पदार्थ।

सल्लेखना ली एक हाथी ने

हाथी को कौन नहीं जानता ?

जानते सब हैं; किन्तु शायद कोई यह नहीं जानता कि वह कितना विवेकी, पराक्रमी, साहसी, और मनुष्य से कई गुना अधिक संवेदनशील और सहिष्णु होता है।

भारतीय साहित्य उसकी गौरव-गाथाओं से भरा पड़ा है।

पुराणों में, रण-कथाओं में, राजसी विभूतियों में, स्वप्न-शास्त्र में, धर्म-शास्त्र में, शकुन-शास्त्र में कहीं कोई उसकी महिमा-गरिमा से अपरिचित नहीं है।

जैनों में वह द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ की पहिचान है। भगवान् ऋषभनाथ के वृषभ का उत्तराधिकार उसे कब/कैसे मिला भगवान् जाने; किन्तु जो जनश्रुतियाँ और यथार्थ उसके जीवन से आ जुड़े हैं, उन पर कोई भी राष्ट्र गर्व कर सकता है।

हाथी ने मनुष्य को शोभाश्री/विजय-विभूति प्रदान की इसमें कोई दो मत नहीं हैं; किन्तु फैशन के नाम पर उसके साथ मनुष्य ने जो बदसलूक/ज़ोर-जुल्म किये हैं उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता।

पेरिस के प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय (म्युज़ियम) के प्रोफेसर जीन डॉस्टे ने जो आँकड़े आकलित किये हैं उनसे पता चलता है कि १८६० ई. से अकेला ग्रेट ब्रिटेन साढ़े पाँच लाख टन (५५०,००० टन) हाथी के दाँत आयात करता रहा है। १८८० ई. तक पहुँचते-पहुँचते तरुण/प्रीढ़ हाथी-हथिनियों के वध का आँकड़ा साठ से सत्तर हज़ार प्रतिवर्ष तक हो गया था। यह सब हुआ योरोपीय मंडी में शौक की बर्बर भूख मिटाने को ले कर।

हाथी बहुत सीधा जानवर है। शाकाहारी, सौम्य, शान्त, अपने-काम-से-काम, अहिंसक, और समझदार। यह 'चलता-फिरता पहाड़' स्वयं में कई अद्भुत आध्यात्मिक शक्तियों का खज़ाना भी है।

बांस की कोमल कोपलें और वृक्ष की हरी-भरी शाखाएँ इसका प्रमुख आहार है। आफ्रिका के बियावाँ जंगलों और हिमालय की तराई में इसे आसानी से और विपुलता में पाया जा सकता है। भारत में इसे मंगल का प्रतीक माना गया है। यहाँ की शिल्प-कला और धार्मिक परम्पराओं में इसका हमेशा से, और काफी महत्त्व रहा है। दक्षिण भारत में गजलक्ष्मी को बड़ी पवित्र दृष्टि से देखा जाता है।

आचार्य जिनसेन के 'आदिपुराण' में गज की कई किस्मों का उल्लेख हुआ है : द्विप, मातंग, कुंजर, दंती, द्विरद, स्तम्बेरम, भीलुकगज, करी, नाग इत्यादि हाथी के पर्याय शब्द हैं। होने को साहित्य में ये एक-दूसरे की जगह काम में आते रहे हैं; किन्तु इनमें सूक्ष्मतर भेद है स्वभाव, व्यक्तित्व, और संस्कार को ले कर। हम जिस

नर हाथी का जिक्र आगे करने जा रहे हैं, लगता है वह मातंग श्रेणी का हाथी रहा होगा। मैसूर के इर्दगिर्द के जंगलों में जो हाथी पाये जाते हैं, उन पर जैनधर्म का असर न हुआ हो यह असंभव ही है? जैनधर्म कर्नाटक की हवा में सदियों तक धड़कता रहा है। यह हाथी जिसकी सल्लेखना का वर्णन हम करने जा रहे हैं मातंग जाति का रहा होगा।

हाथी की उम्र अमूमन ७५ से १०० वर्ष की मानी जाती है। गजशिशु का औसत वजन दो सौ पौंड के लगभग होता है। एक जवान हाथी चार सौ से पाँच सौ पौंड तक का आहार रोज करता है। दिन में दो बार पानी पीता है। इसे सिर्फ खाने में प्रतिदिन सौलह घंटे खर्च करने होते हैं। शेष आठ घंटों में यह अपनी बाकी की चर्या संपन्न करता है; किन्तु जो हो हाथी होता गजब है।

हाथी-दाँत, जिन्हें 'सफेद सोना' कहा जाता है, इस सरल मन प्राणी के लिए जानलेवा सिद्ध हुए हैं। इन्हीं के लिए इसका बड़ी बेरहमी से वध किया जाता रहा है। एक हाथी-दाँत का वजन लगभग दो सौ पौंड होता है। इसका मतलब हुआ हरेक हाथी तकरीबन चार सौ पौंड सफेद सोना ले कर चलता है। परम्परानुसार हाथी पच्चीस की उम्र में युवा और पचहत्तर-सौ की वय के बीच कभी वृद्ध होने लगता है।

उसके बुढ़ाने के कुछ संकेत हैं। कर्ण-पल्लव झुक-मुरझ जाते हैं और दंतमूल काले पड़ने लगते हैं। मस्तक के गड़हे गहरे होने लगते हैं, उसकी मांसलता घट जाती है। उसमें सूँघने की शक्ति अद्भुत होती है। वह गुस्सैल होता है और आक्रमक भी; इसीलिए कई बार वह अंकुश के काबू में भी नहीं रह पाता; जो हो वह होता ममता और सहानुभूति का धनी है। महावत उसे शिक्षित करता है, और अंकुश से उसे अपने अनुशासन में रखता है।

कई बातें हैं हाथी को ले कर; किन्तु जब भी उसका प्रसंग आता है तब एक तो महावीर के समवसरण में जाते राजा श्रेणिक के हाथी की याद बरबस आ जाती है कि वह झूमता-झामता चला जा रहा है और एक भक्त दर्दुर के स्वर्गस्थ

होने का निमित्त बन रहा है; दूसरे याद आती है कि वह दलदल में फँस गया है और विष्णु उसके उद्धार के लिए उस तक दौड़े चले आये हैं। गज को भारतीय लोकजीवन में मंगल/शुभ/स्वस्तिकर माना गया है। गजनीराजनाविधि/गज-च्छायाव्रत जैसे धार्मिक रवाज उसकी महिमा/महत्ता का परिचय देते हैं। अग्नि-पुराण में 'गजायुर्वेद' की विस्तृत चर्चा हुई है। सच पूछिये तो हाथी को ले कर एक संपूर्ण विज्ञान/शास्त्र ही विकसित हो गया है; किन्तु शिकारियों ने इधर इसका जो अध्ययन किया है, जो तथ्य उसके स्वभाव-संस्कार को ले कर प्रकट किये हैं, वे हैरत में डालने वाले हैं।

एक सवाल हैरान करता रहा है कि भारी-भरकम देह वाला यह जानवर अपना जीवनान्त कैसे करता है? कहाँ लुप्त हो जाता है इतना बड़ा यह पशु? यह प्रश्न भी गर्दन उठाता है कि क्या पारिस्थितिकी (ईकोलॉजी) में जिस जैविक संतुलन की बात कही गयी है, हाथी की उसमें कोई हिस्सेदारी है, या उसका होना धरती के लिए महज भार है? क्या जैविक संतुलन कायम रखने में वह प्रकृति की कोई सहायता करता है?

यह सवाल भी उठता है कि जिस तरह मनुष्य जीवन-मरण की धारणाओं को स्पष्ट किये हुए है, क्या हाथी को भी जीवन/मृत्युबोध है? डू एलीफेंट्स हैव एनी आइडिया ऑफ डेथ? मृत्यु क्या होती है क्या हाथी को इसका कोई भान होता है? जो प्राणी सोलह घंटे खाने में और बाकी सोने में बिताता है क्या मृत्यु के मर्म को वह जानता है?

हाथी सामाजिक होता है—निपट ममतालु; इसीलिए ऐसे अवसर दुर्लभ ही होते हैं जब वह जूथ/झुंड से हट कर अकेला भटकता हो। वह यूथचारी प्राणी है और उसकी सामाजिकताएँ मनुष्य से काफी मिलती-जुलती हैं।

सल्लेखना/संधारा/समाधिमरण जैनधर्म के पारिभाषिक शब्द हैं। जैनाचार्यों ने मृत्यु को महोत्सव माना है। एक तो जैनदर्शन में मृत्यु के लिए कोई गुंजाइश है ही नहीं। वहाँ द्रव्य अविनाशी है, मात्र पर्यायान्तर होता है। आत्मा ने एक ठाँव छोड़ा, दूसरे में गयी—अब उसकी इस यायावरी को आप मरण कह लें, या एक लम्बी यात्रा का पड़ाव; जो जी में आये कहें; किन्तु कृपया ऐसां ज़रूर करें जैसा इस हाथी ने किया है जिसका जिक्र हम आगे की पक्तियों में करने जा रहे हैं।

जैनाचार्यों ने मरण की कई क्रिस्में बतायी हैं जिनमें से तीन मशहूर हैं: बाल-मरण, बालपण्डितमरण, पण्डितमरण। हम जिस नर मातंग का प्रसंग सामने रख रहे हैं वह पण्डितमरण का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है; किन्तु यह सवाल बार-

बार चेतना से टकराता है कि क्या हाथी यह जानता है कि मरण है किस चिड़िया का नाम ? शब्द उसके पास हैं नहीं; दर्शनशास्त्र उसने किसी विश्व-विद्यालय में पढ़ा नहीं—फिर भी क्या कोई धुंधली छवि उसके मनोदर्पण पर मृत्यु को ले कर बनती है, या जिस तरह वह मरण का वरण करता है वह उसकी जातीय परम्परा है ?

कैनेथ एंडरसन (१९१०-१९७४) अपने जमाने के एक विख्यात शिकारी रहे हैं, जिन्होंने सैकड़ों भारतीय गाँवों को नरभक्षी सिंहों से मुक्त किया है; किन्तु अपने जीवन की साँझ में वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि चाहे जो प्राणी हो मनुष्य को कोई अधिकार नहीं है कि उसे सताये, चिड़ये, या उसके प्राण ले ले। वे मानते थे कि वन्य प्राणियों का प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने में बहुत बड़ा हाथ है। जिस हाथी से उनकी मैत्री हुई और उन्होंने अपने जीवन के चार दिनों में जिस तरह उसे अत्यधिक शान्त/विनीत/सौम्य भाव से मौत को चूमते देखा वह सब कुछ आश्चर्य में डालने वाला है।

लगता है जैसे कोई विनोबा, या जिनेन्द्र वर्णी या कोई आचार्य शान्तिसागर मरण का पुण्यवरण कर रहा हो—अविकल, अविचल, शान्त। इस हाथी को देखते मन में यह बात निरन्तर उठती है कि क्या किसी पशु में मृत्यु-की-छवि इतनी संतुलित/असंदिग्ध/सम्यक्/रवच्छ हो सकती है ? क्या वह शरीर-आत्मा के मर्म को इतनी स्पष्टता से समझ सकता है ? क्या मरण के विचलित करने वाले क्षण उसके सामने इतने अचंचल हो जाते हैं कि वह उन्हें अत्यन्त समत्व/सौम्य के साथ झेल लेता है ? क्या वह यह जान कर भी कि उसे इस शरीर को जिसे उसने पाला-पोसा-पुष्ट किया है छोड़ना है किसी विचलन/घबराहट को महसूस नहीं करता ? केनेथ एंडरसन भारत के जंगलों में खूब घूमे हैं। कई नरभक्षी सिंहों का शिकार उन्होंने किया है किन्तु अन्ततः उन्हें लगा कि पशुओं को नहीं मारा जाना चाहिये चूँकि इस विश्व की सौंदर्य-रचना में उनकी भी बहुत बड़ी भूमिका है।

जिस सत्यकथा को हम दे रहे हैं उसका संबन्ध एंडरसन की एक महत्वपूर्ण कृति 'द टायगर रोड्स' के तीसरे अध्याय 'द क्वीअर साइड ऑफ थिंग्स' से है। उक्त कृति के पृष्ठ १३१-१४० में उन्होंने इस महान् मातंग के संथारे का जीवन्त वर्णन किया है।

वे लिखते हैं कि मैं जो अगला किस्सा दे रहा हूँ वह किसी जादुई करिश्मे या चुड़ैल-डायन से संबन्धित नहीं है वरन् एक ऐसे असाधारण पशु से संबन्धित है जो धीरे-धीरे मेरा अजीब दोस्त बन गया; किन्तु बदकिस्मती से यह मैत्री चार दिन की चाँदनी साबित हुई।

अनाइकुट्टी का बियावाँ जंगल है। एक हाथी लगभग पचास गज की दूरी पर बहुत शान्त मन से चर रहा है यानी शाखाएँ तोड़-खा रहा है।

जिस कार में हम लोग हैं उसमें कई दर्शक और शौकिया फोटोग्राफर्स हैं।

मैं कार के पिछले भाग में बैठा हुआ हूँ। हाथी को हम सबने देखा है;

किन्तु उसने हमारी ओर कतई ध्यान नहीं दिया है। वह अपना काम संपूर्ण एकाग्रता/अभय से कर रहा है।

कार में जो दूसरे लोग हैं वे विदेशी हैं (एंडरसन का जन्म १९०४ में हैदराबाद में हुआ। वे स्कॉटलैंड के रहने वाले थे। उनका सारा जीवन भारत में बीता। वे ब्रिटेन एक बार गये अन्यथा उन्होंने भारत कभी नहीं छोड़ा)।

एक विदेशी कार से कूद पड़ा है और उसने शान्त भाव से चर रहे हाथी पर पत्थर फेंकना शुरू कर दिया है। वह अपनी भुजाएँ झुला रहा है। उसने पहला पत्थर फेंका है; किन्तु निशाना चूक गया है। दूसरा पत्थर हाथी के पास वाले एक वृक्ष को लगा है और टकरा कर पीठ पर लगा है; किन्तु हाथी अविचलित है उसने इस विदेशी की हरकत पर कोई ध्यान नहीं दिया है।

तीसरा पत्थर हाथी के कपाल पर लगा है और उसके बाँयें दाँत पर से फिसलता हुआ वह जमीन पर आ गिरा है। हाथी शान्त है। उसने इस नादानी पर भी कोई उत्तेजना/नाराजी व्यक्त नहीं की है; सिर्फ अपनी पीठ फेर ली है और पड़ोस के झाड़ के पीछे चला गया है इस तरह कुछ देखता हुआ कि 'तुम लोग चले क्यों नहीं जाते? मेरे शान्त/एकान्त जीवन को इस तरह संकट में क्यों डाल रहे हो? मैं तुम्हारे किस काम में विघ्न डाल रहा हूँ?'

हाथी का यह आचरण हैरत में डालने वाला है। कोई नर हाथी इस तरह का अहिंसक/अनाक्रमक रुख अपनाये यह असंभव और असामान्य ही है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे विश्वास हो गया था कि नर हाथी हमला करेगा और जो विदेशी बड़ी दिलेरी से उसे सता रहा है इस दुनिया से बिदा हो जाएगा। कार का वजूद भी खतरे में पड़ जाएगा।

यह शिकार-शास्त्र, या जंगल के नियम के खिलाफ है कि यदि कोई जंगली हाथी या प्राणी नाराजी जाहिर करे, या इस तरह की उदासीनता व्यक्त करे तो उसे चिढ़ाया जाए, तँगाया/सताया जाए, या उसकी ओर पत्थर फेंके जाएँ।

बड़ी मुश्किल से हम अपने उस सिरफिरे सहयात्री को दूसरे प्राणियों के फोटोग्राफ्स लेने के लिए मना पाये हैं।

शाम की छह बजे हैं। हम उसी मार्ग से लौट रहे हैं। वही हाथी सामने है। फासला बमुश्किल एक फर्लांग है। हम उसे देखने के लिए रुके हैं। वह बेहद शान्त भाव से जुगाली कर रहा है। कुछ खा/चबा रहा है। उसके मन में कोई खिन्नता नहीं है; कोई प्रतिशोध नहीं है।

हमने बड़े गौर से उसे देखा है। वह 'वीतमोह' खड़ा है।

मैं मन-ही-मन छान-बीन कर रहा हूँ कि वह कहीं बीमार/अस्वस्थ तो नहीं है? तय है कि वह बीमार नहीं है, किन्तु बुढ़ा गया है। उम्र की कोई सत्तरवीं मंजिल पार कर गया है। (क्या जब कोई आदमी इस तरह वृद्ध होता है तब वह इतना शान्त वीतमोह हो जाता है? क्या उसकी लालसाएँ/बुभुक्षाएँ शान्त हो जाती हैं?)

हाथी का बुढ़ापा दो संधियों/झरोखों से झाँक रहा है: मुड़े हुए कर्ण-फलकों से और कपाल पर गहराते गड़हों से।

इस बार उस अजनबी ने फिर पत्थर चलाने शुरू कर दिये हैं।

मैं मान रहा हूँ कि इस बार की भिड़न्त काफी खतरनाक/भीषण होगी और हाथी आत्मरक्षा में कोई हिंसक हमला जरूर करेगा। हम सब, इस तरह, एक बहुत बड़े झमेले में पड़ जाएँगे।

किन्तु—

किन्तु हाथी ने पीठ फेर ली है और बड़े शान्त भाव से अपनी निर्धारित चर्या में लगा हुआ है।

उसका व्यवहार चकित कर देने वाला है। ऐसा व्यवहार तो एक पालतू हाथी से भी अपेक्षित नहीं है/नहीं होता; अन्ततः उस विदेशी को, जो दुस्साहसी, पागल, या दोनों एक साथ है, हम सबने जबरन कार में बिठाया है और अपने पड़ाव की ओर बिदा हुए हैं।

आश्चर्य, वह हाथी फिर भी शान्त चित्त/अविचलित/प्रसन्न/सौम्य अपने काम में लगा हुआ है— इस तरह कुछ जैसे कहीं/कुछ हुआ ही नहीं है।

विदेशी बुदबुदाया है: 'कैसे हैं ये भारतीय हाथी? बिलकुल खरगोश की तरह डरपोक/अहिंसक।'

(इन पंक्तियों के लेखक को याद आ रहा है तीर्थंकर अजितनाथ के लांछन वाला वह हाथी जो उन लोगों से शायद काफी बेहतर है जो कर्मकाण्ड में बहुत चीखते हैं, या शास्त्र-स्वाध्याय में व्यर्थ की बहस करते हैं और भीतर से बीने होते हैं— एंडरसन के हाथी की तुलना में शायद पासंग में भी नहीं आते।)

एंडरसन लिखते हैं :

शाम का खाना चल रहा है। मुझे तरह-तरह के बहुत सारे सवाल किये जा रहे हैं, जिनके उत्तर मेरे पास नहीं हैं। मैं सोच रहा हूँ कि इस नर हाथी ने, जो हमला कर सकता था, इतना शालीन/विनीत आचरण क्यों किया? मैं सो गया हूँ इस झंड़े के साथ कि अगले दिन इस समस्या का कोई-न-कोई समाधान अवश्य ढूँढ़ निकालूंगा।

दूसरे दिन का नाश्ता समाप्त कर चुका हूँ। मैंने दो कारम्ब खोजियों को साथ लिया है। रायफल ली है और उस ठाँव के लिए चल पड़ा हूँ जहाँ उस हाथी को खोजा जा सकता है।

अधिक कठिनाई नहीं हुई है। वह अनाइकुट्टी नदी के तट-प्रान्त पर एक वृक्ष-के-तले बड़े शान्त चित्त से खड़ा है। चर वह नहीं रहा है। शायद कुछ सोच रहा है।

कारम्ब सावधानी बरत रहे हैं; किंतु मैं/किंचित् भयभीत, अपनी रायफल के साथ उसके निकटतर हो रहा हूँ।

हाथी कोई ध्यान नहीं दे रहा है। मैं उसके इर्दगिर्द घूम रहा हूँ। वह चुप है। मुझे भरोसा हुआ है कि या तो वह बुरी तरह घायल हुआ है, या रुग्ण है, या अंधा है, या काना है,

या बहरा है, या उसकी सूँघने की शक्ति अकरमात् लुप्त हो गयी है। मुझे विश्वास हुआ है कि हो, न हो कोई गंभीर गड़बड़ - कायिक गड़बड़ - इसमें हुई है।

मैंने पुनः उसकी परिक्रमा दी है।

वह मेरी गतिविधि को अपनी छोटी आँखों से टुकुर-मुकुर देख रहा है; किन्तु इन आँखों में क्रोध की कोई भभक नहीं है। कोई बदले की भावना नहीं है। वह मातंग है; फिर भी मुझे उसमें कोई उन्माद/उत्तेजना नहीं दिखायी पड़ रही है।

मैं निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हाथी अंधा नहीं है।

तो फिर आखिर कौन-सी गड़बड़ी है कि वह इतना सब होने पर भी अनुद्विग्न खड़ा है?

इतने में यूँ ही उसने अपनी सूँड उठायी है और वृक्ष की एक शाखा अपने मुँह में डाल ली है। इससे तय हुआ कि वह रुग्ण नहीं है और न ही बहुत गंभीर रूप से घायल ही है।

खूब गहन छान-बीन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर आया हूँ कि हो-न-हो हाथी

बुढ़ा गया है। उसके स्याह पड़ रहे दंतमूलों से, कर्णपल्लवों के झुकने/मुरझने से, तथा मस्तक पर गहरा रहे गड़हों से इसका पता चल रहा है।

दोनों कारुम्ब, जो अनुभवी हैं, और कुछ फासले पर खड़े हैं, कह रहे हैं : 'महाशय, इस हाथी के साथ कोई गड़बड़ी नहीं है। यह वृद्ध हो गया है— बहुत वृद्ध। धरती पर अब इसके दिन गिनती के रह गये हैं। यह नदी-तट पर अपने प्राण विसर्जित करने आया है।'

हाथी को मैंने वहीं छोड़ दिया है और मैं अपने पड़ाव पर उन्मन लौट आया हूँ।

दूसरे दिन मुझे गुडलूर में कुछ काम है। मैं देख रहा हूँ कि साँठों से भरी एक गाड़ी सामने से गुजर रही है। मुझे उस बूढ़े हाथी की याद आ रही है। मैं एक दर्जन छहफुटे साँठे खरीद रहा हूँ। मेरे भीतर प्रयोग और मैत्री दोनों हमक्रदम हैं।

दूसरी सुबह मैं तीन कारुम्बों के साथ साँठों का भारा लिये हाथी की खोज में निकला हूँ। वह अनाइकुट्टी नदी-तट पर खड़ा है वृक्ष की छाया में; सर्वथा शान्त/सौम्य/अविचल वह है। मैं बड़ी सावधानी से उसकी ओर क्रदम उठा रहा हूँ। एक कारुम्ब मेरे साथ है जिसके पास छह साँठे हैं। मैं हाथी से मुखातिब हूँ। मैंने कारुम्ब से दो साँठे लिये हैं। राइफल साथ है। आगे बढ़ रहा हूँ। देख रहा हूँ हाथी की आँखों में हिंसा का कोई भाव नहीं है, क्षमा और मैत्री तरंगें भर रही हैं। मैं इंतजार कर रहा हूँ उस पराकाष्ठा का जो या तो मित्रता में बदलती है, या शत्रुता में? अब मैं कुछ फुट दूर ही रह गया हूँ। उसने अपनी सूँड़ से एक फुफकार छोड़ी है। उसके कर्ण-पल्लव हिल रहे हैं। वे आगे-पीछे हो रहे हैं। ये बुरे संकेत हैं। मुझे लग रहा है कि मातंग हमले की चित्तवृत्ति में आ रहा है। मैं स्तब्ध हूँ। मैंने अपना हाथ साँठों के साथ आगे बढ़ा दिया है। मैं बोल बिलकुल नहीं रहा हूँ चूँकि मैं जानता हूँ : मनुष्य की आवाज़ जानवरों में चिड़न और क्रोध पैदा करती है।

हाथी अपेक्षया कुछ कम चंचल हुआ है। मेरे हाथ दुखने लगे हैं। साँठों का बोझ दुस्सह हुआ है। मैं कुछ इंच और आगे बढ़ा हूँ। मैंने छहफुटे साँठे के पत्ते हाथी के आगे किये हैं। उसे आमन्त्रित किया है।

साँठा हाथी ने ले लिया है और वह उसे बार-बार जमीन पर पटक रहा है। मैं सोच रहा हूँ कि संभवतः वह अपने अगले क्रदम की संयोजना कर रहा है। सोच रहा हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि हाथी साँठे को फेंक दे? मुझे मार डाले? मुझ पर भीषण आक्रमण कर बैठे? कई आशंकाएँ मन में आ-जा रही हैं। मन अशान्त है।



किन्तु,

आश्चर्य उसने साँठे को अपने दोनों मुखपाश्वर्यों में रख लिया है और उसे चबा रहा है। इक्षुरस उसे भा रहा है, भला लग रहा है। वह साँठा चबा रहा है और अपनी छोटी-छोटी आँखों से मुझे अपलक देख रहा है।

उसकी इन आँखों में कोई शत्रुता नहीं है, कोई दुश्मनी नहीं है, कोई क्रोध नहीं है— है तो वीतमोहत्व, उदासीनता, और विरक्ति।

मैंने दूसरा साँठा उसकी ओर बढ़ाया है। इसे भी उसने स्वीकार कर लिया है। वह उसे चबा रहा है। उसका आनन्द ले रहा है।

कारुम्ब कुछ फासले पर खड़े हैं और मेरे इस पागलपन को बड़े ध्यान से, देख रहे हैं। मैं कारुम्बों के पास दो बार और गया हूँ। मैंने उनसे साँठे लिये हैं और अपने इस नवसखा को दिये हैं।

अन्ततः हम दोनों में मित्रता का एक अटूट अनुबन्ध हो गया है : आश्चर्यजनक !

गुनलूपेट में मैं अपने एक फॉरेस्ट रेंजर दोस्त से इस घटना का जिक्र कर रहा हूँ। वह आश्चर्यचकित है। उसने कुछ ऐसे अनुभव सुनाये हैं जो कैंपा देने वाले हैं। इन सुनायी गयी भयानक घटनाओं के झुरमुट में से अनाइकुट्टी का नर हाथी/उसका क्षमा-विनयपूर्ण व्यवहार झाँक रहा है। इतिहास ने उस नर हाथी के चरणों में अपना मस्तक नवा दिया है। उसका विनयपूर्ण व्यवहार चकित कर देने वाला है।

दूसरे दिन मैं फिर गया हूँ।

मेरे हाथी दोस्त ने इस बार साँठे तुरन्त ले लिये हैं, किन्तु मात्र दो; अधिक बिलकुल नहीं। शायद इस बार उसे भूख नहीं है, या कोई और संकल्प उसके शान्त चित्त पर स्थापित है।

उसे मैंने कई बार साँठे देने का प्रयत्न किया है, किन्तु हर बार उसने इन्ह अपनी सूँड की नोक से छू लिया है और मना कर दिया है। इस तरह उसने नवस्थापित मित्रता का सम्मान तो किया है, किन्तु वह अपने भावी संकल्प के प्रति भी पूरी तरह सावधान/सजग है।

अगले दिन मैं फिर गया हूँ। इस बार नर हाथी — मेरे प्रगाढ़/अभिन्न मित्र — ने कुछ भी नहीं लिया है।

वह मौन खड़ा है। उसकी आँखें सजल हैं। मुखमण्डल पर क्षमा का भाव है। आँखों से कृतज्ञता झाँक रही है। कोई भावी संकल्प की रोशनी उन बुझती-सी आँखों में-से दीख पड़ रही है। मैं उससे बिदाई ले रहा हूँ। वह मुड़ कर इस तरह कुछ देख रहा है जैसे दो बहुत पुराने दोस्त बिछुड़ रहे हैं।

किन्हीं कारणों से मैं अगले दिन नहीं जा सका हूँ।

किन्तु चौथे दिन सबेरे ९ बजे उसे पुनः देखने की उत्कण्ठा से चल पड़ा हूँ।

कारुम्ब और साँठे मेरे साथ हैं

पर मेरा दोस्त वहाँ नहीं है।

मैं जान सका हूँ कि वह अब कहाँ है।

कारुम्बों ने बताया है कि वह नदी के चढ़ाव पर करीब आधा मील की दूरी पर उस 'बड़े पोखर' पर चला गया है जहाँ हाथी अक्सर समाधि लिया करते हैं।

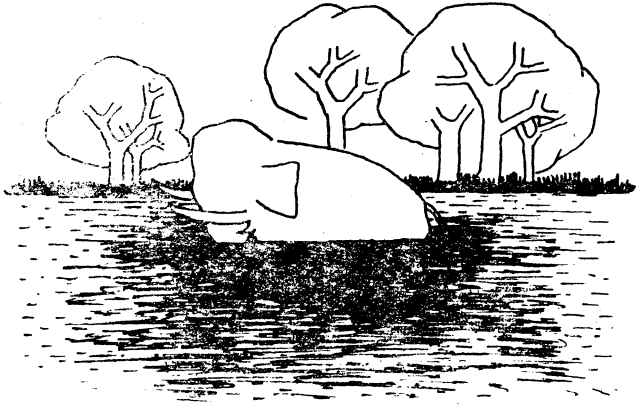
और वह वहाँ मिल गया। मिला वह जरूर, किन्तु उसका पार्थिव शरीर मात्र वहाँ था, वह इस दुनिया से कूच कर चुका था। पोखर चार फुट गहरा था।

मौसम खुशक था, अतः उसकी गहराई घट गयी थी।

हाथी उसमें जानबूझ कर उतरा था और उसने अपनी सूँड और मस्तक को पानी के तल-भाग में रख दिया था।

उसका अगला भाग उभरा हुआ था, जिससे जाना जा सका कि वह अब इस दुनिया को छोड़ गया है।

यहाँ मुझे अपने उस सवाल का उत्तर मिल गया कि हाथी अन्ततः जाते कहाँ हैं? कैसे छोड़ देते हैं अपनी देह, अपने प्राण? वृद्ध होने पर वे नदी में स्वयं को जल-संलीन कर देते हैं।



रहस्य खुल गया किन्तु उसी क्षण याद आया वह वीतमोह मित्र, मित्रता के वे बहुमूल्य क्षण जो हाथी के साथ विकसित हुए थे; कितनी कम उम्र थी मित्रता के इन क्षणों की? कुल चार दिन के कुछ घंटे।

□□

अब हम इस घटना को जैन दृष्टि से लें।

हाथी ने इस तरह की अभूतपूर्व क्षमा कैसे धारण की?

हमले का उत्तर उसने हमले से क्यों नहीं दिया?

इतने दुस्सह उपसर्ग के बावजूद उसने अपने परिणाम इतने शान्त/सौम्य/भद्र कैसे रखे?

उसे मृत्यु का पूर्वाभास कैसे हुआ?

मृत्यु-पूर्व उसने क्रमशः आहार-त्याग क्यों/किस प्रेरणा से किया?

क्या इस तरह की तैयारी – मृत्यु की अगवानी के लिए चित्त को सजग करना – मनुष्य की तुलना में भी श्रेष्ठतर नहीं है?

क्या हम इस मातंग को द्वादशानुप्रेक्षा/बारह भावनाओं का जीवन्त रूप नहीं कह सकते?

क्या शास्त्राभ्यास के बिना चित्त की शान्ति/एकाग्रता/अविचलता और सम्यक्त्व की उपलब्धि संभव नहीं है?

क्या सम्यक्त्व/समत्व/सारल्य के लिए किसी भाषा की जरूरत है ?

क्या हाथी के इस आचरण में हमें 'मूलाचार' की इस गाथा की स्पष्ट प्रतिध्वनि नहीं सुनायी देती ?

जो कोई मज्ज उवही सब्भंतरवाहिरो य होवे ।

आहारं च सरीरं जावज्जीवा य वोसरे ॥११४॥

(जो कुछ भी मेरा अभ्यन्तर और बाह्य परिग्रह है उसे तथा आहार और शरीर को मैं जीवन-भर के लिए छोड़ता हूँ।)

क्या हाथी के इस बर्ताव में से 'वोसरे' का स्पष्ट अर्थ ध्वनित/व्याख्यायित नहीं है ?

क्या हम हाथी जिस पगडंडी पर चला उस पर चल सकते हैं ?

क्या हाथी की इस अचंचल/शान्त/क्रमबद्ध/सुविचारित समाधि को खुदकुशी कहा जा सकता है ?

क्या हम रूढ़/परम्परित जन हाथी की इस अ-शास्त्रोक्त सल्लेखना को सल्लेखना संज्ञा देने का साहस कर सकते हैं - ऐसी सल्लेखना जिसके आगे एक शिकारी तक नतशीश आ खड़ा हुआ।

-प्रलयंकर ।



जैन जैविकी शब्द-कोश

शब्द-संख्या १६८

अंग—शरीर के प्रमुख अवयव; संख्या ८/२ पैर, २ हाथ, छाती, पेट, पीठ, सिर।
अंजलि—दोनों हथेलियों के मिलाने से बनने वाला संपुट; एक माप, जो स्वांजलि-प्रमाण होता है।

अंडज—उत्पत्ति-स्थान की दृष्टि से त्रस जीवों के भेदों में से एक; अंडों से उत्पन्न होने वाले जीव; जैसे—मोर, कबूतर आदि।

अण्डर*—स्कन्ध का अवान्तर भेद; स्कन्ध का सूक्ष्मतर अवयव; प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति काय का अवयवरूप।

अन्तर प्ररूपणा—विरह अथवा शून्यकाल की विवेचना।

अन्तर्मुहूर्त—अड़तालीस मिनट की अवधि; आठ समय से अधिक और दो घड़ी के भीतर का काल।

अग्नि प्रा.—अग्नि; जो मूलतः उष्ण हो।

अग्नि—सामान्य अग्नि; एकेन्द्रिय अग्नि जीव जिसके चार रूप हैं—सामान्य अग्नि; अग्निकाय (अग्नि जीव द्वारा परित्यक्त शरीर); अग्निकायिक (अग्नि काय जिसमें अग्निजीव मौजूद है); अग्नि जीव (जो अग्निकाय में उत्पन्न होने के लिए विग्रहगति में है)।

अग्रबीज—वनस्पति-भेद; वनस्पति जो (अग्र) कलम से उत्पन्न हो जाती है; यथा—मल्लिका, गुलाब आदि।

अट्ठी (प्रा.)—अस्थि, हड्डी।

अनन्त—(व्यु. अन् + अन्त); अन्त नहीं है जिसका; एक-एक संख्या घटाने पर जो राशि समाप्त न हो; —अनन्त=अनन्त × अनन्त/अनन्तानन्त।

अनित्य निगोद—सादि-सान्त निगोदिया जीव।

*स्कन्ध (दे. स्कन्ध) के चार अवान्तर भेद हैं—अण्डर, आवास, पुलवि, बादर निगोद। ये सब निगोदिया जीवों के उपनिवेश हैं, जो उत्तरोत्तर छोटे होते गये हैं। इन जीवों के अलग-अलग शरीर न हो कर साधारणरूप एक ही शरीर (काय) होता है। प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति और साधारण वनस्पति पर्याय शब्द हैं। इन चारों को एक रूपक से समझा जा सकता है, यथा—स्कन्ध को विश्व या जम्बूद्वीप, अण्डर को देश या भरतक्षेत्र; आवास को प्रदेश या कोशल आदि देश, पुलवि को नगर या वाराणसी आदि, तथा बादर निगोद को मोहल्ला या नगर-स्थित मकान आदि कहेंगे।

अनिन्द्रिय=इन्द्रिय-रहित; मुक्त जीव; ऐसे जीवों का अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख इन्द्रियातीत होता है।

अनुवाद=आचार्य-परम्परा के अनुसार किसी विषय का कथन; सूत्र के अनुकूल कथन।

अपचित=क्षीण, दुर्बल।

अपर्याप्ति=पर्याप्तियों की अपूर्णता; दे. पर्याप्ति।

अब्बुय=अर्बुद; फोड़ा; दे. कलल।

अप्रतिष्ठित=प्रत्येक वनस्पति जिसके आश्रित निगोदिया जीव नहीं होते।

अमनस्क=असंज्ञी; असैनी; मन-रहित जीव; एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक समस्त जीव असैनी होते हैं, तिर्यच सैनी और असैनी दोनों होते हैं।

अर्थ=बोध; जिसे जाना जाए या प्राप्त किया जाए।

अल्पबहुत्व प्ररूपणा=संकोच-विस्तार का विवेचन।

असंख्यात=एक-एक संख्या के घटाने से जो राशि समाप्त हो जाए; संख्यातीत।

अहीरूक=जिनके तोड़ने पर बालरूप तन्तु न लगा रहता हो (हीरूक=बालरूप तन्तु)।

आदेश प्ररूपणा=विशेष रूप से कथन।

आठक=दे. आढग।

आढग=एक माप; चार प्रस्थ; चार सेर; ३.७२० कि.ग्रा.

आतप=जिसकी प्रभा उष्ण हो।

आत्मा=शुद्ध जीव द्रव्य, (प्रा. आदा)।

आम=खाया हुआ वह भोजन जिसे जठराग्नि ने पकाया है;—आशय=आम का स्थान।

आयु=गति-विशेष; कर्म-विशेष; शरीर धारण करना।

आवलिका=समय का माप-विशेष; असंख्य समयों का समुच्चय।

आवास=दे. अण्डर; प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति-स्थित एक-एक अण्डर में असंख्यात आवास होते हैं; स्कन्ध का अवान्तर भेद।

आसादन=सम्यग्दर्शन की विराधना।

आहार=औदारिक आदि शरीर के योग्य पुद्गल-पिण्ड ग्रहण करने की क्रिया;—क=आहार करने वाला;—वर्गणा=आत्मा से व्याप्त आकाश क्षेत्र में स्थित वे पुद्गल-स्कन्ध जो खल और रस भाग के परिणमन की शक्ति रखते हैं;—पर्याप्ति=उक्त शक्ति लिये पुद्गल स्कन्धों की प्राप्ति।

आहारक वर्गणा—आहारक शरीर रूप परिणमित पुद्गलस्कन्ध ।

इन्द्रिय—कर्मबद्ध आत्मा की व्यक्तियाँ; आत्मा का लिंग या चिह्न; संख्या—पाँच; स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र; इनके विषय क्रमशः हैं—स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द; —पर्याप्ति—अपने अनुरूप देश में स्थित मूतिक पदार्थों को ग्रहण करने रूप शक्ति की उत्पत्ति में कारणभूत पुद्गलों की प्राप्ति ।

उद्भिज्ज—भूमि को फोड़ कर निकलने वाले सम्मूर्च्छिम जीव; जैसे—टीड़, पतिते ।

उद्योत—जिसकी प्रभा भी उष्ण न हो ।

उपचित—पुष्ट ।

उपयोग—अवधानता; जीव का आत्मभूत लक्षण; दो भावेन्द्रियों में से एक; अर्थ या विषय को ग्रहण करने का व्यापार ।

उपांग—कान, नाक, गाल, ओठ, आँख, अंगुलि आदि ।

एकेन्द्रिय जीव—जिनके एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है; संख्या ५—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक; इनके मात्र चार पर्याप्तियाँ होती हैं : आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास ।

ओघ प्ररूपणा—सामान्य कथन; सत्प्ररूपणा का एक कथन-भेद ।

औदारिक—मनुष्य और तिर्यंच जीवों के स्थूल शरीर ।

औपपतिक—उपपात का वाच्यार्थ है सहसा घटित या घट्यमान घटना; देव, नारक आदि के शरीर ।

कफ—तीन शूणाओं (वात, पित्त, कफ) में-से एक; श्लेष्मा ।

कर्ष—१६ मासा; (एक तोला बराबर बारह मासा) ।

कलल—गर्भ का आरंभिक रूप; गर्भ की आरंभिक सात दिनों की अवस्था; अर्बुद; जमा हुआ शुक्र और रक्त ।

कलिल—अशुच; सकलुष; अपावन ।

कवक—सींग में उत्पन्न होने वाली जटाकार वनस्पति ।

कषाय—जो जीव को कर्म के खेत में जोतती है; जो आत्मा के विशुद्ध परिणामों का घात करती है; संख्या ४—क्रोध, मान, माया, लोभ ।

काय—औदारिक आदि शरीर; जो पुद्गल-स्कन्धों द्वारा पुष्टि को प्राप्त हो; संख्या ६—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति, त्रस ।

कार्मण—जीव-प्रदेशों से संबद्ध आठ प्रकार के कर्मपुद्गल; —वर्गणा—जो पुद्गल कार्मण शरीररूप परिणमित हो; ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का समूह ।

काल प्ररूपणा=पदार्थों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति का कथन ।

कालेयक (कालेय) =हृदय के मांस-खण्ड; कलेजा ।

किण्व=कुकुरमुत्ता; वर्षाऋतु में कूड़े-कचरे पर होने वाली छत्राकार वनस्पति ।

किल्बिष=पाप; अन्त्यजों के समान हीन देव ।

कुडव=१२ अंजुलि; एक सेर; एक प्रस्थ ।

कुणिम (प्रा.) =दे. कुथित ।

कुथित=मलिन; रक्तरंजित; घृणित ।

कुल=जातिभेद ।

कुहन=भोजन और काँजी आदि पर लग जाने वाली फूली (फफूंद) ।

क्षेत्र प्ररूपणा=वर्तमान क्षेत्र का कथन ।

खल=तलछट; अवशेष ।

गति=आत्मा की पर्याय विशेष; एक भव से दूसरे भव में जाने की प्रक्रिया; गमन करना; भवान्तर की प्राप्ति; संख्या ४-मनुष्य, देव, नारक, तिर्यच ।

गम्भपदं=गर्भशास्त्र, भ्रूण-विज्ञान (अं. एम्ब्रियोलॉजी) ।

गुण=विशेषता जो द्रव्य में संपूर्णतया और सभी स्थितियों में बनी रहे ।

गूढ शिरासंधि पर्व वनस्पति=जिस वनस्पति की शिरा अर्थात् बाहरी नस, संधि-रेखाबंध और पर्वगाँठें दृष्टिगोचर न हों ।

चतुरिन्द्रिय जीव=जीव जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियाँ होती हैं; यथा-मच्छर, मकखी, मकड़ी; भौरा आदि ।

चेतना=जिसमें पदार्थ प्रतिबिम्बित हो; जीव का स्वभाव ।

छद्मस्थ=ज्ञानावरण और दर्शनावरण को 'छद्' कहा गया है, अतः जो इन दोनों में रहते हैं वे जीव छद्मस्थ हैं; सकषाय जीव; सावरण जीव ।

छिन्नरह=वनस्पति जो छिन्न-भिन्न कर देने पर भी जड़ पकड़ सकती है; यथा-थूहर आदि ।

छेद=भेद; अभाव; न होना ।

जगश्रेणि=प्रदेशों की सात रज्जु जितनी सीधी कतार ।

जरायुज=जेर (जरायु, गर्भवेष्टन, झिल्ली) के साथ जन्म लेने वाले प्राणी ।

जल=एकेन्द्रिय जीव-भेद; जल चार रूपों में पाया जाता है-सामान्य जल (निर्जन्तुक छना या गर्म किया हुआ जल); जलकाय (गर्म किया हुआ वह जल

जिसे जलजीव ने छोड़ दिया है); जलकायिक (जल जिसमें जलजीव हैं);
जलजीव (जलकाय में उत्पन्न होने वाला विग्रहगतिक जीव) ।

जिह्वा=रसना; जीभ; द्वितीय इन्द्रिय, जिसका विषय रस है और आकृति खुरपे
के समान ।

जीव=जो द्रव्य भावप्राण धारण करने में समर्थ है; सचेतन द्रव्य; जो चार प्राणों
के द्वारा जीवित है, आगे जीवित रहेगा, पहले जीवित था; वह अस्तित्व
जो जाने और देखे ।

जीवसमास=जिसमें जीव भले प्रकार रहते हैं अर्थात् पाये जाते हैं; औदयिक,
औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, और पारिणामिक गुण, या भाव;
जीवस्थान - ये चौदह हैं ।

जैव=जीव-सम्बन्धी ।

जैविकी=जीव-विज्ञान; (अं. बायॉलॉजी) ।

ज्ञान=सत्यार्थ प्रकट करने वाली शक्ति-विशेष; जिसके द्वारा द्रव्य, गुण और पर्यायों
को जाना जाता है; तत्त्वार्थबोधि ।

डोहल=दोहद; गर्भवती स्त्री की कामना या अभिलाषा ।

णह=नख ।

ण्हारू=दे. स्नायु ।

तिर्यक्=एक गति; जो तिरछे यानी कुटिल हैं (तिर्यक्); जिनके मन-वचन कुटिल
हैं; जो निकृष्ट ज्ञानी हैं; जिनकी आहार आदि संज्ञाएँ स्पष्ट हैं ।

तैजस् = अग्नि ।

त्रस = (व्यु. त्रस्) = चलना; एक जीव-भेद जो बादर ही होते हैं ।

त्रीन्द्रिय जीव=वे जीव जिनके स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं;
जैसे - खटमल, चींटी, बिच्छू, कनखजूरा आदि ।

शूणा=स्थूणा; खम्भा; शरीर के तीन प्रमुख आधार-वात, पित्त, कफ ।

दंड (दण्ड)=जीवहिंसा; प्राणनाश ।

दर्शन=अन्तर्मुख चित्प्रकाश; पदार्थ का अभेदरूप में सामान्य ग्रहण ।

द्रव्य=जो अपने अस्तित्व (सत्) को न छोड़ता हुआ उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये युक्त
होने के साथ गुणवान् और पर्यायवान् भी होता है ।

द्रव्येन्द्रिय=कर्म-द्वारा रचित इन्द्रिय; ये द्विविध है-निर्वृत्ति, उपकरण; निर्वृत्ति
इन्द्रियों के आकाररूप परिणत विशुद्ध आत्मप्रदेशों की रचना है तथा उप-
करण वह है जो निर्वृत्ति का उपकार करती है, उन्हें सहायता करती है ।

द्वीन्द्रिय जीव = जीवभेद; जीव, जिनके स्पर्शन और रसना दो ही इन्द्रियाँ होती हैं;
यथा - शंख, सीप, कृमि आदि ।

[धरण = एक माप; १० पल; ४० तोला; आधा सेर; ४६५ ग्राम ।

निगोदिया जीव = साधारण वनस्पति; जीव जिनका निवास निगोद है ; ये अनन्तानन्त होते हैं; व्यु. नि = नियत, गो = भूमि, द = देता है अर्थात् वे जीव जो स्वयं अनन्तानन्त जीवों की बस्ती (कालोनी/उपनिवेश) होते हैं ।

नित्य निगोद = अनादि-अनन्त काल तक निगोदभव में बने रहने वाले जीव ।

नैरयिक = नरक-संबन्धी; नारक ।

नोकर्म = वस्तु को ग्रहण करने में बाधक; जीव का पंचभौतिक बाह्य शरीर; लोक के समस्त दृष्ट पदार्थ; याद रहे नोकर्म मात्र निमित्त होते हैं, वे स्वयं कर्म नहीं होते- 'तो' का अर्थ 'निमित्त' है ।

नोकषाय = वे कर्म जिनका कषायों के साथ उदय हो; इनका काम मात्र कषायोद्दीपन होता है, यथा - क्रोध में हास्य ।

पंचेन्द्रिय जीव = जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ होती हैं; यथा - पशु, पक्षी, मनुष्य आदि ।

पक्व (प्रा. पक्व) = उदररग्नि द्वारा पका आहार; -आशय = संबन्धित उदर-स्थान ।

पणक = बादर काय वनस्पति; जमान, ईंट आदि पर लग जाने वाली काई ।

परमाणु = पुद्गल का अविभागी अंश ।

पर्याप्त = पूर्ण; नामकर्म के उदय से युक्त जीव (व्यु. परि + आप्त) ।

पर्याप्ति = पुद्गलोपचय जन्य शक्ति-विशेष (उपचय = पुष्ट, निश्चित); शक्ति का पूर्णता; पर्याप्तियाँ छह हैं : आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासाच्छ्वास, भाषा, मन; इन शक्तियों की पूर्णता के हेतु का पर्याप्ति कहा जाता है; पर्याप्ति और प्राण में अन्तर है; पर्याप्ति कारण है, प्राण कार्य है ।

पर्याय = गुण, विकार; परिणमन; उत्पाद-व्यय ।

पर्वबीज = जिन वनस्पतियों की पोर (पर्वभाग) से उत्पत्ति होती है; यथा - साँठा, बेंत आदि ।

पल = ४ तोला; ४. ६४८ ग्राम ।

पित्त = तीन धूणाओं में-से एक; एक तरल पदार्थ जो यकृत में बनता है; (अं. बाइल) ।

पुद्गल = जिसका पूरण-गलन हो; रूपी द्रव्य ।

पुरुष=आत्मा, जीव ।

पुलग=पुलक; अंकुर; रोएँ (?)

पुलवि=एक-एक आवास में असंख्यात पुलवियाँ होती हैं; प्रत्येक वनस्पतिकाय के विशेष भेद; दे. अण्डर ।

पृथिवी=एकेन्द्रिय जीवभेद; इसे चार तरह से देखना चाहिये—पृथ्वी सामान्य (प्रासुक), यथा-मार्ग में पड़ी निर्जन्तुक धूलि आदि; पृथ्वी काय (पृथिवी-कायिक जीव के द्वारा परित्यक्त) यथा - ईंट आदि; पृथ्वीकायिक (पृथ्वी शरीर को धारण किये हुए पृथ्वी जीव); पृथ्वीजीव (पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने से पूर्व विग्रहगतिक जीव); पृथ्वी के छत्तीस भेद हैं ।

पृथ्वीकायिक=दे. पृथिवी ।

पोतज=त्रस; गर्भज; पोत (चर्ममय थैली) से उत्पन्न होने वाले जीव; यथा—हाथी आदि ।

प्रत्येक शरीर=जिन जीवों के प्रत्येक अलग-अलग शरीर होता है; प्रत्येक शरीर वनस्पति आदि बादर ही होते हैं; जिनका स्वामी एक है वे प्रत्येक काय वनस्पति हैं, यथा—नारियल, सुपारी आदि के वृक्ष ।

प्रदेश=निरंश अंश; जिस अंश के दो अंश न हों; यह स्कन्ध का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग है; जितने आकाश को एक पुद्गल परमाणु रोकता है ।

प्रमाद=कषाय-सहित अवस्था ।

प्ररूपणा=प्रतिपादन, निरूपण, व्याख्या, विवेचना; इनकी संख्या २० है ।

प्रस्थ=एक सेर; ९३० ग्राम ।

प्राण=जिनके द्वारा आत्मा जीती है (पाणति जेहि जीवा); आत्मा के वे धर्म जिनके कारण जीव जीवन-व्यवहार करता है, जिनके द्वारा आत्मा जीवन-संज्ञा को प्राप्त होता है; ये दस हैं: पाँच इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल, काय-बल, श्वासोच्छ्वास, आयु ।

प्राणी=दस प्राणों से युक्त होने के कारण अभिहित ।

प्रासुक=निर्जन्तुक (प्रगता असवो यस्मिन्=निकल गये हैं प्राणी जिसमें-से) ।

बादर=स्थूल, दृष्टिगोचर जीव ।

बादर निगोद=एक-एक पुलवि में असंख्यात बादर निगोद होते हैं; स्कन्ध का अवान्तर भेद; दे. अण्डर ।

बीज-बीज=जो वनस्पतियाँ बीज से उत्पन्न होती हैं; यथा—गेहूँ, ज्वार, मक्का आदि ।

बुब्बुद (प्रा.)=बुलबुला ।

भव्य=निर्वाण-पद प्राप्त करने योग्य ।

भाव प्ररूपणा=पदार्थ के परिणामों का कथन ।

भावेन्द्रिय=दो हैं—लब्धि और उपयोग; ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम विशेष; ग्रहण-योग्यता; याद रहे लब्धि के होने पर ही द्रव्येन्द्रियों की रचना होती है; लब्धि-निमित्त से आत्मा का परिणमन उपयोग कहलाता है ।

भाषा पर्याप्ति=भाषा-वर्गणा के स्कन्धों को चतुर्विध भाषारूप परिणमन कराने की शक्ति में निमित्तभूत नोकर्म पुद्गलों की प्राप्ति ।

भूत=वनस्पतिकायिक जीव; भूत, भविष्यत्, वर्तमान में रहने के कारण ।

मांसपेसी=मांसपिण्ड; मांसपेशी; (अं. मसल) ।

मच्छुर्लिंग (मत्थुलुंग)=मस्तिष्क ।

मज्जा=हड्डी के भीतर का गूदा; मांस का गूदा; (अं. मेरो) ।

मनःपर्याप्ति=अनुभूत अर्थ में स्मरणरूप शक्ति में निमित्त मनोवर्गणा के स्कन्धों से निष्पन्न पुद्गलों की प्राप्ति ।

मार्गणा=अन्वेषणा; खोज; खोज-प्रक्रिया या सूत्र; खोज के उपाय;—स्थान : ये १४ हैं—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक; मृगयिता=खोजने वाला (यहाँ श्रद्धालु भव्य-जीव); मृग्य=जिसे खोजा जाए, १४ गुणस्थानों से युक्त जीव; मार्गणा=खोज के उपाय, खोज की क्रिया; मार्गणोपाय=खोज के साधन; यथा—गुरु-शिष्य आदि; मार्गणा-स्थान=जिनमें या जिनके द्वारा जीव खोजे जाएँ ।

मुक्त=जीव-भेद; कर्म-रहित जीव ।

मुक्ति=जीव की शुद्ध दशा ।

मूलबीज=वनस्पति, जो मूल से उत्पन्न हो, यथा—अदरक, हल्दी आदि ।

मृतादी=प्रासुक आहार खाने वाला; निर्ग्रन्थ (व्यु. मृत+अदी) ।

मेद=चर्बी ।

योग=जीव की परिस्पन्दन रूप क्रिया; आत्मप्रदेशों का संकोच-विस्तार; मन, वचन और काय की प्रवृत्ति ।

योनि=जीव का उत्पत्ति-स्थान; ये नौ हैं: सचित्त, अचित्त, मिश्र; शीत, उष्ण, मिश्र; संवृत, विवृत, मिश्र ।

रसज=त्रस; छाछ, दही आदि रसों के विकृत होने पर उनमें उत्पन्न कृमि; सम्मूर्च्छन ।

लब्धि=बोध; अर्थ को ग्रहण करने की शक्ति; भावेन्द्रिय-भेद ।

लेश्या=मन, वचन, काय की कषाय से अनुरंजित प्रवृत्ति; पुद्गलों के सम्बन्ध में आत्मा के होने वाले परिणाम; स्मरण रहे—लेश्या में योग की प्रधानता है; लेश्याएँ छह हैं: कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ।

वनस्पति=एकेन्द्रिय जीव-भेद; द्विविध—प्रत्येक, साधारण; इन्हें भी पृथ्वीकायिक जीव की भाँति चार प्रकार से देखना/समझना चाहिये; दे. पृथ्वी ।

वर्गणा=वर्गसमूह; स्कन्ध; स्थूल शरीरों या स्कन्धों के मूल कारणभूत सूक्ष्म स्कन्ध (एलीमेंट्स); दे. नोकर्म ।

वात=सामान्य वायु ।

वायु=एकेन्द्रिय जीवभेद; दे. पृथ्वी ।

विकलेन्द्रिय=त्रसभेद; दो, तीन, या चार इन्द्रिय जीव; यथा—शंख, गोपालिका, भ्रमर आदि ।

विग्रह गति=शरीर के लिए जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं; एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर को ग्रहण करने के लिए जीव का गमन ।

वीतराग=जिनका राग नष्ट हो गया है ।

वेद=आत्मा की प्रवृत्ति में मैथुनरूप सम्मोह की उत्पत्ति ।

वैक्रियिक=देव/नारकियों के शरीर; जिनमें हल्के-भारी तथा नाना प्रकार के रूप बनाने की शक्ति हो ।

संख्या प्ररूपणा=परिमाण का कथन; सत्प्ररूपणा की उत्तरवर्ती प्ररूपणा ।

संज्ञा=वांछा, अभिलाष; ये चार हैं: आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ।

संज्ञी=मन-सहित ।

सम्मूर्च्छिम=त्रस-भेद; बाहरी वातावरण के संयोग से उत्पन्न होने वाले जीव; यथा—मक्खी, मच्छर, चींटी आदि ।

सम्मूर्च्छिम वनस्पति=जिनका मूल, अग्रबीज आदि के अभाव में भी जन्म होता है ।

संयम=व्रत-धारण, समिति-पालन, इन्द्रिय-जय, कषाय-निग्रह ।

संसार=जीव की अशुद्ध दशा; जीव और कर्म के संयोग से होने वाली दशा ।

संसारी=कर्म-सहित जीव ।

संस्वेदज=त्रसभेद; पसीने से उत्पन्न होने वाले जीव; यथा—जूं, लीख आदि ।

संहनन=हड्डियों की रचना ।

सकलेन्द्रिय=पूर्ण इन्द्रिय-संपन्न जीव; पंचेन्द्रिय जीव; याद रहे जल, थल, नभचर तथा देव, नारकी, मनुष्य सकलेन्द्रिय हैं।

सत्=होना; द्रव्य का लक्षण; जो "है"।

सत्त्व=विविध पर्याय-परिवर्तन के बावजूद आत्मद्रव्य के ज्यों-के-त्यों होने के कारण अभिहित।

सत्प्ररूपणा=अस्तित्व की विवेचना।

सप्रतिष्ठित=बादर निगोद जीवों द्वारा आश्रयरूप स्वीकृत; प्रत्येक वनस्पति, जिसके आश्रित निगोदिया जीव रहें।

समनस्क=मन-सहित जीव; दे. संज्ञी।

समभंग=जिन्हें तोड़ने से समान भंग हो जाता है, कोई छाल आदि नहीं बच रहती।

समय=एक पुद्गल परमाणु के एक प्रदेश पर से दूसरे प्रदेश पर जाने का काल।

समुद्घात=मूल शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना।

सम्यक्त्व=तत्त्वार्थ-श्रद्धान; बाहरहवीं मार्गणा।

साधारण शरीर=कई जीवों का अलग-अलग शरीर न हो कर साधारणरूप एक शरीर; यथा-एक मकान के कई कमरे और उनमें रहने वाले कई किरायेदार; दे. अण्डर।

साम्पराय=कषाय।

सूक्ष्मकाय जीव=जो सर्वत्र लोकाकाश-पर्यन्त जल, थल और आकाश में बिना किसी आधार के रहते हैं।

स्कन्ध¹=जो एक-दूसरे में समा सकें।

स्कन्ध²=प्रतिष्ठित प्रत्येक जीव के शरीर असंख्यात लोक हैं अर्थात् अपने योग्य असंख्यात लोक के प्रदेशों को गुणा करने पर जो परिमाण हो उतने हैं; समस्त परमाणुओं से निर्मित पिण्ड; दे. पा. टि. अण्डर।

स्कन्धबीज=कन्दभाग से उत्पन्न हो सकने वाली वनस्पतियाँ; यथा-कदली, पिंडालु आदि।

स्कन्धदेश=स्कन्ध का अर्द्धभाग।

स्कन्धप्रदेश=स्कन्धदेश का आधा।

स्थण्डिल=खुला मैदान।

स्थूल स्कन्ध=जो एक दूसरे में न समा सकें; दे. स्कन्ध।

स्पर्शन प्ररूपणा=अतीत और वर्तमान स्पर्श का कथन।

स्वभाव=जो सदैव वैसा-का-वैसा, ज्यों-का-त्यों जानने में आये; यथा-जीव में जीवत्व।

स्थावर=गमनागमन करने में असमर्थ जीव (स्था=ठहरना)।

स्नायु=शिरा, नस।

शिरा=नस, रग, रक्त की छोटी नाड़ी, तन्त्रिका; (अं. वेन)।

शुद्धोपयोग=रागद्वेष-रहित परिणाम। †

शैवाल=जल में होने वाली हरी-भरी बादर काय वनस्पति।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति=उच्छ्वास तथा निःश्वासरूप शक्ति की पूर्णता में निमित्तभूत पुद्गलों की प्राप्ति; यह पर्याप्ति भी इन्द्रिय-पर्याप्ति के बाद एक अन्तर्मुहूर्त बीतने पर पूर्ण होती है।

△ △

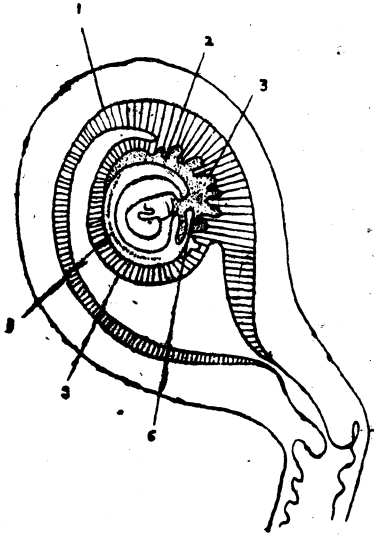
भ्रूण-विज्ञान : कैसे बनता है यह शरीर

शरीर का रचना-क्रम

कललगदं दसरत्तं अच्छदि
कलुसीकदं च दसरत्तं ।

थिरभूदं दसरत्तं अच्छदि
गब्भम्मि तं बीयं ॥१००१॥

गर्भ-स्थित माता का रज और पिता का वीर्यरूप बीज दस दिन तक कललरूप में रहता है; फिर दस दिन तक कालिमारूप होता है और फिर दस दिन तक स्थिर रहता है।



दो माह का भ्रूण

१. आपाश्वर्ष पतनिका २. आधार पतनिका ३. रूक्ष जरायु ४. योक कोष ५. संपुट पतनिका ६. मसृण जरायु तत्तो मासं बुब्बुदभूदं, अच्छदि पुणो वि घणभूदं । जायदि मासेण तदो, मंसप्पेसी या मासेण ॥१००२॥

स्थिर होने के बाद एक मास तक बुलबुले की तरह रहता है; पुनः एक मास तक घनरूप अर्थात् कठोररूप रहता है; फिर एक मास में मांस के पिण्डरूप होता है।

मासेण पंच पुलगा तत्तो,
हुंति हु पुणो वि मासेण ।

अंगाणि उवंगाणि य णरस्स,
जायति गब्भम्मि ॥१००३॥

पाँचवें महीने में उस मांस-पिण्ड में-से दो हाथ, दो पैर और सिर के रूप में पाँच अंकुर उगते हैं। छठे मास में उस बालक के अंग और उपांग बनते हैं (दो पैर, दो हाथ, एक नितम्ब, एक छाती, एक पीठ, एक सिर ये आठ अंग और कान, नाक, गाल, ओठ, आँख, अंगुली आदि उपांग हैं)।

मासम्मि सत्तमे तस्स होदि,
चम्मणहरोमणिप्पत्ती ।

फंदणमट्ठममासे णबमे,
दसमे य णिग्गमणं ॥१००४॥

सातवें महीने में उस गर्भस्थ पिण्ड पर चर्म, नख और रोम बनते हैं। आठवें मास में उसमें हलन-चलन होने लगती है। नौवें अथवा दसवें मास में उसका जन्म होता है।

—भगवती आराधना/आचार्य शिवार्य/गाथा
1001-04

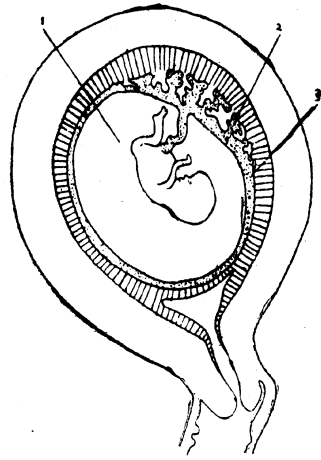
सत्ताहं कललं होइ,
सत्ताहं होइ अब्बुयं ।
अब्बुया जायए पेसी,
पेसीओ^२ वि घणं भवे ।

—पइण्णयसुत्ताइ/2-18

तो पढमे मासे करिसूणं^३ पलं^४ जायइ। बीए मासे पेसी संजायए घणा । तईए मासे माऊए डोहलं^५ जणइ। चउत्थे मासे माऊए अंगाई पीणेइ । पंचमे मासे पंच पिडियाओ पाणिं^६ पायं सिरं चैव निव्वत्तेइ^७ छट्ठे मासे पित्तसोणियं उव-

चिणेइ; अंगोवंगे च निव्वत्तेइ। सत्तमे मासे सत्त सिरासयाइं पंच पेसीसयाइं नव धमणीओ नवनउयं च रोमकूवसहस्साइं (९९००००००) निव्वत्तेइ विणा केसमंसुणा, सह केस-मंसुणा अदधुट्ठाओ रोमकूव-कोडीओ निव्वत्तेइ (३५०००००००)। अट्टमे मासे वित्तीकप्पो।^{१०} हवइ।

—पइण्णयसुत्ताइं/2-19



१. अर्बुद; शुक्र-रुधिर का जमा हुआ रूप। २. पेशियाँ। ३. कर्षण। ४. मांस।
५. दोहद; गर्भवती स्त्री का अभिलाषा।
६. पुष्ट; उभरता है। ७. निष्पन्न होते हैं। बनते हैं। ८. पित्त और शोणित/रक्त।
९. अर्धचतुर्थ; साढ़े तीन। १०. वृत्तिकल्प।

गर्भस्थ जीव का आहार-परिणाम

जीवस्स णं भंते! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारे इ वा पासवणे इ वा खेले इ वा सिंघाणे इ वा वंते इ वा पित्ते इ वा सुक्के इ वा सोणिए इ वा? नो इणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चइ-जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारे इ वा जाव सोणिए इ वा? गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे जं आहारमाहारेइ तं च्चिणाइ सोइंदियत्ताए चक्खुइंदियत्ताए घाणिदियत्ताए जिब्भिंदियत्ताए फासिदियत्ताए अट्ठि-अट्ठिमिज-केस-मंसु-रोम-नहत्ताए, से एएणं अट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-जीवस्स णं गब्भग-यस्स समाणस्स नत्थि उच्चारे इ वा जाव सोणिए इ वा ॥ - पइण्णयसुत्त/२/२०; भ., श. १, उ. ६, सू. १४।

(गर्भस्थ जीव को विष्टा, मूत्र, श्लेष्म, नासिकामैल, वमन, और पित्त नहीं होता; क्योंकि वह जो आहार करता है उसको एकत्रित कर कान, चमड़ी, हड्डी, मज्जा, बाल, दाढ़ी, रोम और नखरूप में परिणत करता है।)

तीन माह का भ्रूण

१. उल्ब गूहा २. गर्भ नाल ३. उल्ब-जरायु समेकन

गर्भगत जीव की आहार विधि

जीवे णं भंते! गब्भए समाणे प्हू म्हेण कावलियं आहारं आहारित्तए? गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ - जीवे णं गब्भगए समाणे नो प्हू म्हेणं कावलियं आहारं आहारित्तए? गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ, सव्वओ परिणामेइ, सव्वओ ऊससइ, सव्वओ नीससइ; अभि-क्खणं आहारेइ, अभिक्खणं परिणामेइ, अभिक्खणं उससइ, अभिक्खणं नीससइ; आहच्च आहारेइ, आहच्च परिणामेइ, आहच्च ऊससइ, आहच्च नीससइ; से माउजीवरसहरणी पुत्तजीवरसहरणी माउजीवपडिबद्धा पुत्तजीवफुडा तम्हा आहारेइ तम्हा परिणामेइ, अवरा वि य णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा च्चिणाइ तम्हा उवचिणाइ, से एएणं अट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ - जीवे गब्भगए समाणे नो प्हू म्हेणं कावलियं

आहारं आहारेत्तए । - पइ. २१; भ., श., १, उ. ७, सू. १५ ।

(गर्भस्थ जीवरूप से आहार नहीं करता । वह आत्मा के माध्यम से ही संपूर्ण आहार ग्रहण करता है, परिणत करता है, और श्वासोच्छ्वास लेता है अथवा कदाचित् आहार लेता है, कदाचित् परिणत करता है और कदाचित् श्वासोच्छ्वास लेता है । पुत्र के जीव को रस पहुँचाने में तथा माता का रस खींचने में कारणभूत मातृजीवरस-हरणी नामक नाड़ी, माता के जीव से संबद्ध है और पुत्र के जीव से जुड़ी हुई है । इसके द्वारा पुत्र का जीव आहार ग्रहण करता है तथा उसे परिणत करता है । दूसरी एक और नाड़ी है जो पुत्र के जीव से संबद्ध है और माता के जीव से जुड़ी है, उससे पुत्र का जीव आहार का चय-उपचय करता है ।)

गर्भस्थ जीव का आहार

तस्सफलंबित्सरिसा,

उप्पलनालोवमा भवइ नाभी ।

रसहरणी जणणीए सयाइ,

नाभीए पडिबद्धा ॥२३॥

नाभीए ताओ गम्भो,

ओयं अइयइ अण्हयंतीए ।

ओयाए तीए गम्भो,

विवड्ढई जाव जाओ त्ति ॥२४॥

—पइ. 23, 24

उत्पन्न जीव में माता-पिता के अंगों की स्थिति

कइ णं भंते ! माउअंगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ माउअंगा पण्णत्ता, तं जहा

मंसे, सोणिए, मत्थलुंगे । कइ णं भंते !

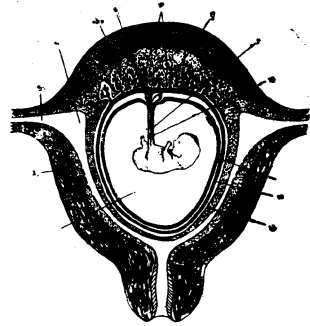
पिउअंगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ

पिउअंगा पण्णत्ता, तं जहा - अट्ठि, अट्ठि-

मिजा, केसमंसुरोमनहा ॥२५॥

—पइ. 25, भ., श., 1, उ. 7, सू. 16-17

पुत्र में माता के तीन अंग हैं : मांस, रुधिर, और मस्तिष्क; पिता के भी तीन अंग हैं : अस्थि, मज्जा, केश दाढ़ी, रोम, नख ।



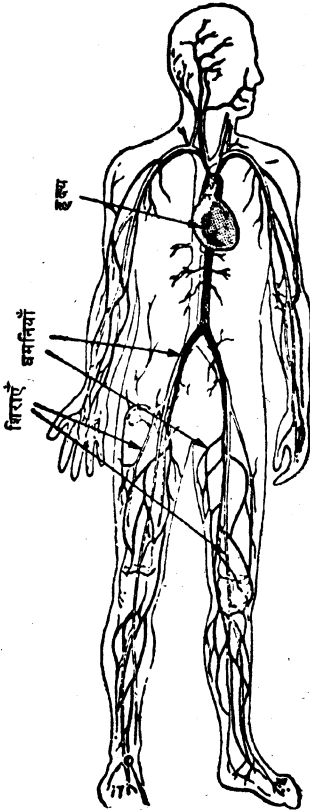
सात माह का भ्रूण

१. उल्ब-गुहा २. आपाश्वं पतनिका
३. अण्ड-वाहिनी ४. गर्भाशय गुहा
५. आधार पतनिका, ६. अपरा
पोषिका, ७. रोमांकुर ८. योक कोष,
९. नाभि-वाहिकाएँ, १०. नाभि-नाल
११. उल्ब १२. जरायु १३. संपुट
पतनिका ।

आधान से प्रसव तक

गर्भाधान के बाद भ्रूण के विकास की जो अवस्थाएँ ज्योतिष में प्रतिपादित हैं, वे आयुर्विज्ञान के अनुरूप हैं । स्त्री का रज और पुरुष का वीर्य पहले माह के अन्त तक एक अण्डाकार पिण्ड का रूप ले लेता है, जिसे कलल कहते हैं; फिर वह पिण्ड लम्बाई तथा कठोरता पाता है; तीसरे माह में उसके हाथ, पैर आदि अवयव निकलने लगते हैं, फिर अस्थियाँ बनने लगती हैं; पाँचवें में त्वचा या चमड़ी जमने लगती है और फिर उस पर बाल उगने लगते हैं; सातवें मास में उसमें चेतना आ जाती है, और आठवें में उसे भूख-प्यास की अनुभूति होने लगती है, नवें माह में उसे बाहरी प्रभावों से छटपटाहट होने लगती है, जिसे उद्वेग कहते हैं, और दसवें मास में वह पूर्णतया विकसित शिशु बन जाता है, जो किसी भी समय प्रसूति के लिए तैयार रहता है ।

हमारा शरीर : अस्थियाँ कितनी, नसें कितनी...



शरीर के अवयव

अट्ठीणि हुंति तिणिण हु सदाणि भरिदाणि
कुणिममज्जाए ।

सव्वम्मि चेव देहे संधीणि हवति तावदिया
॥१०२१॥

इस शरीर में तीन सौ हड्डियाँ हैं, जो
कुथित मांस-रुधिर आदि मज्जा से भरी
हैं। संपूर्ण शरीर में तीन सधियाँ हैं।

णहारूण णवसदमइं सिरासदाणि हवति
सत्तेव ।

देहम्मि मंसपेसीण हुंति पंचेव य सदाणि
॥१०२२॥

नौ सौ स्नायु हैं; सात सौ शिराएँ हैं;
तथा पाँच सौ मांस-पेशियाँ हैं।

चत्तारि सिराजालाणि हुंति सोलस य
कडराणि तहा ।

छच्चेव सिराकुच्चा देहे दो मंसरज्जू या
॥१०२३॥

इसमें चार सौ शिराजाल हैं। रक्त-रंजित
पूर्ण सोलह महाशिराएँ हैं। छह शिरा-मूल
हैं। दो मांस-रज्जू हैं—एक पीठ और एक
पेट के आश्रित।

सत्त तयाओ कालेज्जयाणि सत्तेव होंति
देहम्मि ।

देहम्मि रोमकोडीण होंति असीदि सदसहस्सा
॥१०२४॥

सात त्वचाएँ हैं। सात कालयेक मांसखण्ड
हैं। अस्सी लाख करोड़ रोम हैं।

पक्कामयासयत्था य अंतगुंजाओ सोलस
हवति ।

कुणिमस्स आसस्या सत्त हुंति देहे मणुस्सस्स
॥१०२५॥

पक्काशय और आमाशय में सोलह आँतें हैं;
सात मलस्थान हैं।

श्रूणाओ तिणिण देहम्मि सत्तत्तरं च मम्मसदं ।
णव होंति वणमुहाइं णिच्चं कुणिमं सवताईं

॥१०२६॥

शरीर में वात; पित्त और कफ ये तीन यूणाएँ हैं। एक सौ सात मर्मस्थान हैं नौ व्रण-मख-मलद्वार हैं, जिनसे सदा मल बहता रहता है।

देहम्मि मच्छलिगं अंजलिमितं सयप्पमाणेण ।
अंजलिमित्तो मेदो उज्जोपव य तत्तिओ चव
॥१०२७॥

अपनी एक अंजली-प्रमाण मस्तिष्क है। एक अंजलि-प्रमाण मेद है तथा एक अंजलि-प्रमाण वीर्य है।

तिण्णिय य वंसंजलीओ छच्चेव य अंजलीओ
पित्तस्स ।

सिभो पित्तसमाणी लोहिदमद्धाढगं होदि
॥१०२८॥

तीन अंजलि-प्रमाण बसा (चर्बी) है। छह अंजलि-प्रमाण पित्त है। इतना ही कफ है। रुधिर आधे आठक^१ यां लगभग ३२ पर^२ प्रमाण है।

मुत्तं आढयमेत्तं उच्चारस्स य हवंति छप्पच्छा ।
वीसं णहाणि दंता बत्तीसं होति पगदीए
॥१०२९॥

मूत्र एक आठक-प्रमाण है। विष्ठा छह प्रस्थ^३ प्रमाण है। स्वभावतया बीस नख और बत्तीस दाँत होते हैं।

—भगवती आराधना/1021-29

१. आठक; चार सेर; ३.७२० किलोग्राम

२. चार तोल; ४.६४८ ग्राम।

३. एक सेर; ९३ ०ग्राम।

हमारा यह शरीर वैसे बहुत सुन्दर है; किन्तु इसकी जो आन्तरिक रचना है, वह काफी जटिल और उलझी हुई है।

शरीर की इमारत जिन धूनियों पर टिकी है, वे हैं अस्थियाँ। यदि अस्थियों का यह कंकाल न हो तो शरीर का टिकना असंभव है। जैन पारिभाषिक शब्द है संहनन, जिसका अर्थ है हड्डियों की रचना। राजस्थानी में शरीर के संपूर्ण परिगठन को 'काठी' कहते हैं। जिसकी 'काठी' जितनी मजबूत होती है, वह उतना ही जुझारू और संघर्षशील माना जाता है। काठी की किस्म से ही हम व्यक्ति की सहिष्णुता का अन्दाज़ लगाते हैं। सारा खेल हड्डियों की मजबूती और उनकी संधियों के सशक्त होने पर निर्भर करता है।

हमने पृ. ५५-५९ तक क्रमशः मानव-भ्रूण की रचना/विकास और मनुष्य-शरीर के गठन पर जैनागम की दृष्टि से विचार किया है। स्पष्ट है कि जैनागम न तो चिकित्सा-शास्त्र है और न ही शरीर-विज्ञान; अतः उसके द्वारा जो भी जाना गया है, उसका सीधा सम्बन्ध अध्यात्म को बलवत्तर करने से है।

धर्म ने शरीर को असुन्दर कहा है; किन्तु बगल में यह भी कहा है कि शरीर धर्म का साधन है, अतः एक स्वस्थ शरीर के स्वामी हुए बिना हम किसी कार्य को सफलता-पूर्वक संपन्न कर पायें/यह संभव नहीं है ॥

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ विचार अपना पड़ाव डालते हैं। स्वस्थ तन और स्वस्थ मन बहुत बड़े वरदान हैं। जो लोग शरीर की उपेक्षा करते हैं और फिर अपने अन्तिम दिनों को हाय-हाय और परेशानी में बिताते हैं, उन्हें समय रहते शरीर की सावधान प्रेक्षा करनी चाहिये और जानना

चाहिये कि संपूर्ण शरीर में कहीं-क्या है और शरीर/उसके अवयव, उसकी तमाम व्यवस्थाएँ किस तरह रात-दिन सक्रिय बनी रहती हैं ?

यह बात अलग है कि कोई शरीर को ही अन्तिम मान ले और दिन-रात उसी की सेवा में जटा रहे। शरीर को जानो, उसकी सीमाओं को पहिचानो और फिर उसकी खिदमत करो। शरीर अमर नहीं है। उसकी कई लाचारियाँ हैं। वह एक जटिल यन्त्र है, जिसमें एक साथ अनगिन क्रियाएँ निर्विघ्न संपन्न होती हैं। उसमें छह सौ खरब कोशिकाएँ हैं। नसों का एक अभूतपूर्व जाल बिछा हुआ है। हड्डियाँ हैं। अस्थिबंध हैं। मांसपेशियाँ हैं, जो इन अस्थियों को जकड़े हुए हैं। इन्हीं के आकुंचन और विस्तार से हम नाना क्रियाएँ संपन्न करते हैं। शिराएँ हैं, शिराजाल हैं, तन्त्रिकाएँ हैं, केशिकाएँ हैं जो पूरे शरीर में एक-दूसरे से बँधी हुई बिछी हैं।

जैसे किसी महानगर में टेलीफोन-लाइनों, मल-निकास की नालियों, जल-प्रदाय के पाइपों, सड़कों, गलियों का जाल बिछा होता है, ठीक ऐसे ही हमारे शरीर में एक परिपूर्ण व्यवस्था है। धमनियाँ चल रही हैं, खून दौड़ रहा है, उतक (टिस्सू) और कोशिकाएँ (सेल) अपने-अपने मोर्चों पर तैनात हैं। हमारी नसें सूचनाएँ ला रही हैं और मस्तिष्क से लगातार फरमान भेज रही हैं। पाँचों इन्द्रियाँ मन-मस्तिष्क के आदेश मान रही हैं। मांस, मज्जा, रक्त, वात, पित्त, कफ, तमाम अपनी-अपनी भूमिकाओं में मुस्तैद खड़े हैं।

सात त्वचाएँ हैं, जिनमें से दो मुख्य हैं—कठोर बाह्य त्वचा (एपीडर्मिस) और कोमल आन्तरिक त्वचा (डर्मिस)। ये न हों तो हमारे इस शरीर की सुरक्षा और सुन्दरता खतरे में पड़ जाए। जहाँ एक ओर

ये शरीर के तापमान को नियमित रखती हैं, वहीं ये बाहरी खतरों से उसकी हिफाजत करती हैं। इसी तरह भीतर ग्रन्थियों की एक सक्षम व्यवस्था है। रसायनों का एक महासमुद्र तरंगायित है जो यथा-समय अपना दायित्व निभाता रहता है। हम जो भी खाते, या पीते हैं, हमारा पाचन-तन्त्र उसे यथारूप/यथास्थान पहुँचा देता है। श्वसन-तन्त्र से हमारी भट्टियाँ धधकती रहती हैं। हृदय खून बाँटता है, खून एकत्रित करता है; शुद्ध रक्त को संचारित करता है और अशुद्ध को शुद्ध कर उसे पुनः लौटाता है। उसका यह काम निरन्तर चल रहा है।

ध्यान से देखें; इतने वैविध्य के होते हुए भी शरीर की तमाम क्रियाओं में अपूर्व समन्वय और समरसता है। रक्त-संचार, श्वसन, पाचन, विसर्जन आदि क्रियाएँ लगातार चल रही हैं।

जैनधर्म ने शरीर को नामकर्म के अन्तर्गत निरूपित किया है। 'भगवती आराधना' के जिन अंशों को हमने उद्धृत किया है, उनमें दिये गये तथ्य प्राप्य तथ्यों से भले ही पूरी तरह मेल न खाते हों; किन्तु इनसे हमारे शरीर की एक स्पष्ट झलक अवश्य मिल जाती है। इन्हें इस तरह देने का एक मात्र प्रयोजन यही है कि हम अपने शरीर को अवयवों और उनकी क्रियाओं (फंक्शन्स) के बारे में जानें और निर्लिप्त चले।

भ्रूण-रचना की जानकारी के पीछे भी यही उद्देश्य है। यद्यपि हमारा यह शरीर काफी जटिल और बहुविध क्रियाओं का केन्द्र है तथापि भीतर से घिनौना है; यदि यह किसी तरह जल-झुलस जाए और इस पर से चर्म-की-खोल उतर जाए तो हम इसके इस घिनौनेपन को जान सकते हैं इतना होते हुए भी हम यह अवश्य जानें कि

(शेष पृष्ठ ८८ पर)

पेड़-पौधे भी लेते हैं साँस

जैविकी (बायोलॉजी) की दो शाखाएँ हैं : प्राणिकी और वानस्पतिकी । जैविकी को सरल शब्दों में हम एक ऐसा विज्ञान निरूपित कर सकते हैं जो जीवन के अस्तित्व का अध्ययन/प्रतिपादन करता है । पृथ्वी पर जहाँ भी कोई जैव अस्तित्व है जैविकी का क्षेत्र वहाँ तक विस्तृत है । प्राणियों में मनुष्य पशु-पक्षी; नभचर, जलचर, थलचर आदि आते हैं और वनस्पति के अन्तर्गत तमाम पेड़-पौधे, काई-कुकुरमुत्ते आदि आ जाते हैं ।

जैनधर्म सदियों से कहता आ रहा है कि वनस्पतियों में जीवन है; उनमें धड़कन है वे साँस लेती हैं, आहार लेती हैं और उनमें स्पर्श-संवेदन है ।

आम आदमी के लिए वनस्पतियाँ भले ही जड़-निष्प्राण रही हों किन्तु एक आगमवेत्ता के लिए उनमें प्राण हैं और वे मनुष्य की ही तरह जीवन्त हैं ।

जैनधर्म के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति एकेन्द्रिय जीव हैं । उनमें पाँच संवेदनों में से एक संवेदन (स्पर्श) है; विज्ञान ने भी अब यह साबित कर दिया है कि वनस्पतियों में संवेदन है और वे बिलकुल अन्य प्राणियों की तरह अनुक्रिया/प्रतिक्रिया करती हैं ।

‘गोम्मटसार’ जैनदर्शन का एक अमूल्य ग्रन्थ है, जिसके अन्तर्गत ‘जीवकाण्ड’ में जीव के स्वरूप पर विस्तार से विचार किया गया है ।

इसमें पर्याप्ति की विवेचना में वनस्पतियों में चार पर्याप्तियों के सोने का उल्लेख है ये चार हैं—आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास । (दे. पर्याप्ति पृ. ५०)

पर्याप्ति जीव की वह योग्यता है जो पुद्गलस्कन्धों को यथा-प्रयोजन परिणति/परिवर्तित करती है ।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति के अन्तर्गत आहारवर्गणा के रूप में आये पुद्गलस्कन्धों को श्वासोच्छ्वास में परिणमित करने वाली जो जैव क्षमता है उसे आनापान/श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति निरूपित किया गया है ।

पेड़-पौधे श्वसन करते हैं अब यह सत्य पूरी तरह स्थापित हो चुका है । सही है कि उनके श्वसन की प्रक्रिया वह/वैसी नहीं है जैसी मनुष्यों की या पशु-पक्षियों की होती है; किन्तु वे श्वसन करते हैं इसमें कोई संदेह नहीं है ।

मनुष्य के शरीर में छह सौ खरब कोशिकाएँ हैं । वनस्पतियाँ एककोशिक होने के साथ ही अनन्तानन्त कोशिक भी होती हैं । कोशिका शरीर की संरचना और उसके बहुविध प्रकार्य (फंक्शन)

का एक महत्वपूर्ण घटक है।
इन्हीं कोशिकाओं में अन्य
बहुत सारी प्रक्रियाओं के साथ
ही प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया भी
घटित होती है।

हरे पेड़-पौधे सूर्य से ऊर्जा ग्रहण करते
हैं, जो रासायनिक ऊर्जा के रूप में
संचित होती रहती है। एटीपी के
रूप में यह उच्चशक्ति ईंधन का काम
करती है। इस ऊर्जा की सहायता
से कई अकार्बनिक मिश्र (कम्पाउण्ड)
रासायनिक ऊर्जा में बदल जाते हैं।
कोशिका की विविध गतिविधियाँ
इसी ऊर्जा से संपन्न होती हैं।

कार्बनिक यौगिक और एटीपी रासायनिकऊर्जा
की तुलना हम एक कारखाने में प्रयुक्त
कोयले और बिजली से कर सकते हैं।
कार्बनिक यौगिक अपरिशोधित (कच्चे) ईंधन
की तरह तथा एटीपी परिशोधित
ईंधन की तरह काम में आते हैं।
यही ईंधन यथासमय कोशिका में
होने वाले विभिन्न प्रकार्यों में प्रयुक्त
होता है।

यह एक माना हुआ तथ्य है
कि मनुष्य/पशु/वनस्पतियाँ
निरन्तर ऑक्सीजन श्वसित
करती हैं और कार्बनडायाऑक्साइड
निःश्वसित; अर्थात् ऑक्सीजन लेते
हैं और कार्बनडायाऑक्साइड छोड़ती
हैं। विज्ञान की शब्दावली में
ओ₂ लेती हैं और सीओ₂ निर्मुक्त
करते हैं। प्राणियों में इस
क्रिया को फेफड़ों के द्वारा संपन्न
किया जाता है; किन्तु पेड़-पौधों
में यह इतनी स्थूल नहीं है। वहाँ
इसका रासायनिक रूपान्तरण
हुआ है।

श्वसन में, वस्तुतः, कोशिका में
निष्पन्न ऊर्जा का मोचन
होता है। चमत्कार यह है कि
पौधों में ओ₂ की अनुपस्थिति
में भी श्वसन-की-क्रिया संपन्न
होती है। वायुजीवी वनस्पतियाँ
तो ओ₂ लेती हैं और सीओ₂
निर्मुक्त करती हैं, किन्तु अ-वायुजीवी
वनस्पतियाँ ओ₂ की अनुपस्थिति
में भी श्वसन करती हैं।
सही है कि अ-वायुजीवी पेड़-
पौधे जितनी ऊर्जा उत्पन्न करते
हैं वायुजीवी उससे ३२ गुना ऊर्जा
उत्पादित करते हैं, किन्तु ओ₂
के बिना होने वाला श्वसन
स्वयं में एक चमत्कार है।

वायुजीवी पौधों में दोनों तरह
की क्षमताएँ होती हैं
वे अवायुजीवी पौधों की तरह भी
श्वसन कर सकते हैं।

जानें हम कि प्रकाश-संश्लेषण की
व्यवस्था सिर्फ पेड़-पौधों तक
ही सीमित है। वनस्पतियाँ
पर्णहरित (क्लोरोफिल) के माध्यम
से सौर ऊर्जा सोखती हैं और
उन्हें रासायनिक ऊर्जा में बदलती
हैं।

श्वसन की प्रक्रिया समस्त प्राणियों/
वनस्पतियों में समानरूप में
चलती है - रात/दिन।
किन्तु प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया
सिर्फ रोशनी में ही चल सकती है-वह भी
सौर प्रकाश में।

प्रकाश संश्लेषण और श्वसन की प्रक्रिया में
अन्तर है। वनस्पतियाँ
प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया में
सीओ₂ ग्रहण करती हैं और
(शेष पृष्ठ ८८ पर)

वनस्पति-जगत् के रहस्य

अक्सर हम पेड़-पौधों के साथ बड़ा निर्मम और क्रूर बर्ताव करते हैं; किन्तु यह नहीं जानते कि उनमें और जीव-जगत् में कई आश्चर्यजनक समानताएँ हैं। पेड़-पौधे बिलकुल उसी तरह की जिन्दगी बसर करते हैं, जिस तरह की हम; किन्तु दुःखद यह है कि हम अज्ञान के कारण, सम्यक् ज्ञान की अनुपस्थिति में या उनसे संवाद स्थापित न कर पाने के कारण प्रायः उनकी उलझनों और समस्याओं की, संवेदनाओं और अनुभूतियों की अनदेखी कर जाते हैं।

इधर वनस्पतियों पर जो प्रयोग हुए हैं, वे जहाँ एक ओर चौकाने वाले हैं, वहीं दूसरी ओर वे उनके प्रति हमारे बेरहम/अकरुण बर्ताव की ओर इशारा करते हैं।

हम जिन वृक्षों-पादपों, पेड़-पौधों को मूक समझते हैं, वे असल में मनुष्य की अपेक्षा अधिक संवेदनशील और विकसित हैं। वे उसी तरह थकान महसूस करते हैं जिस तरह हम, वे उसी तरह विश्राम करना चाहते हैं जिस तरह हम, वे उसी तरह प्रीति करते हैं जिस तरह हम, वे उसी तरह ग्लानि/जुगुप्सा रखते हैं जिस तरह हम, वे उसी तरह शान्तिपूर्वक/निरापद जीना चाहते हैं जिस तरह हम, वे उसी तरह आत्मरक्षा करते हैं जिस तरह हम, वे उसी तरह साँस लेते हैं जिस तरह हम, वे उसी तरह अपना आहार पचाते हैं जिस तरह हम, उनमें और हममें यदि कोई असमानता है तो सिर्फ यह कि हम उनकी भाषा का ककहरा नहीं समझते और वे हमारी भाषा का; किन्तु इधर कुछ वनस्पति-शास्त्रियों ने इस तरह के यन्त्र और उपकरण ईजाद किये हैं, जो पेड़-पौधों की संवेदनाओं की स्पष्ट/प्रामाणिक सूचनाएँ देते हैं।

हमारी इस सदी के आरंभ में भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु ने इस सम्बन्ध में जो खोज और प्रयोग किये हैं उन पर किसी भी राष्ट्र को गर्व हो सकता है। ऐसे जमाने में जबकि हम पशुओं के साथ भी न्यायोचित बर्ताव नहीं कर रहे हैं, पेड़-पौधों का हम पर कितना अहसान/उपकार है, कितनी कृतज्ञता है उनकी हम पर, इसकी थाह हम नहीं पा सकते।

वनस्पतियाँ हमारे जीवन के लिए कितनी अपरिहार्य हैं, इसका अहसास हम मात्र इसी तथ्य से कर सकते हैं कि

पत्तों की ढाई करोड़ वर्गफुटी सतह रोजमर्रा प्रकाश-संश्लेषण की चमत्कारिक प्रक्रिया में एड़ी-से-चोटी तक जुटी हुई है। यदि ये पेड़-पौधे इस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया से इस्तीफा दे दें और ऑक्सीजन का उत्पादन न करें तो हम एक पल भी ज़िन्दा नहीं रह सकते।

क्या हम महसूस नहीं करते कि हमारे जन्मदिन, हमारी शादियाँ, खुशियाँ, मंदिर-देवालय के पर्वोत्सव, प्रेम, मैत्री, स्वास्थ्य-लाभ, श्रद्धांजलियाँ, अभिनन्दन आदि तमाम सांस्कृतिक स्थितियाँ पेड़-पौधों से जुड़ी हुई हैं? ये पौधे जो इतने रहस्यपूर्ण हैं, हमारे जीवन की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से बहुत करीब से जुड़े हुए हैं।

मध्ययुग तक तो दार्शनिक अरस्तू की यह बात काफी वजन लिये रही कि पेड़-पौधों में आत्मा तो है, किन्तु संवेदन नहीं है; किन्तु अब तो विज्ञान इसे सिद्ध कर चुका है कि पेड़-पौधों पशु-पक्षियों, और मनुष्यों के बीच चल-अचल होने का भेद अवश्य है बाकी कोई भेद नहीं है।

जैनागम ने तो सदियों पूर्व पेड़-पौधों को एकेन्द्रिय जीव के रूप में निरूपित किया है और कहा है कि उनमें चारों संज्ञाएँ (इंस्टिंक्ट्स) होती हैं—आहार/भय/मैथुन/परिग्रह (संचय)। इसी तरह उनमें चार पर्याप्तियाँ भी होती हैं—आहार, शरीर, इन्द्रिय, और श्वासोच्छ्वास।

हमारे निष्कर्ष प्रायः इसलिए गलत बैठते हैं चूँकि हम गौर से तथ्यों को खोजने-परखने की कोशिश नहीं करते। पेड़-पौधों को मूक-बधिर/संवेदन-शून्य मानने की भूल हम — आश्चर्य है — आज भी कर रहे हैं। वस्तुतः हमें प्रयत्न करना चाहिये कि हम पेड़-पौधों के प्रति उतनी ही आत्मीयता बरतें जितनी कि हम अपने परिजनों/कुटुम्बियों के प्रति बरतते/रखते हैं।

आप ताज्जुब करेंगे कि जिस ऊँचाई तक पादप/वृक्ष की जड़ें पानी खींच/ढो ले जाती हैं, उतनी/उस ऊँचाई तक पानी चढ़ाने के लिए हमें एक सुविकसित इंजीनियरी कौशल की आवश्यकता पड़ती है। कितना तामझाम जुटाना होता है हमें उतनी ऊँचाई तक पानी ढो ले जाने में ??

किन्तु पेड़-पौधों में यह प्रक्रिया चुपचाप चलती है; न कोई शोर, न कोई हल्ला-गुल्ला। ४८० फुट ऊँचा पतले तने वाला आस्ट्रेलियाई यूकेलिप्टस अपनी अन्तिम पत्ती तक को हरा-भरा/आकाश में सर ताने बनाये रखता है। यह कौन-सा चमत्कार है हम नहीं जानते; किन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि इन पेड़-पौधों के पास ऐसा कोई जैव बल अवश्य है जो हमारे आधुनिकतम आविष्कारों के मुकाबले अधिक विकसित और किसी आत्मिक शक्ति से संबद्ध है।

पेड़ कभी झूठ नहीं बोलते बल्कि जो

लोग झूठ बोलते हैं उनकी मानसिक क्रिया के अभिलेखन में हमारी मदद करते हैं। वनस्पति-विज्ञानी क्ली बेक्स्टर (अमेरिका का विख्यात झूठ-खोजी) ने इस सिल-सिले में अद्भुत प्रयोग किये हैं।

हम चकित/स्तंभित रह जाएँगे यह जान कर कि सूर्यमुखी का पौधा प्रतिदिन उतना ही पसीना (प्रस्वेद) उत्सर्जित करता है, जितना कोई मनुष्य प्रस्वेदन की प्रक्रिया में छोड़ता है।

प्रायः माना जाता है कि पेड़-पौधे नितान्त संवेदन-शून्य अस्तित्व हैं; किन्तु ऐसा है नहीं। वैज्ञानिकों के अनुसार पेड़-पौधे उन सूक्ष्म ध्वनियों तक को सुन-पकड़ सकते हैं, उन पर अपनी अनुक्रिया दे सकते हैं, जिन्हें मनुष्य का कान ग्रहण करने में प्रायः असमर्थ/अक्षम होता है। पेड़-पौधे उन रंग-तरंग दैर्घ्यों को (इन्फ्रारेड/अल्ट्रावायलेट) को भी देख लेते हैं, जिन्हें मनुष्य के नेत्र नहीं देख सकते। कई पेड़-पौधे टीवी की उच्च फ्रीक्वेंसी तथा एक्स-रे के प्रति भी काफी संवेदनशील होते हैं।

हम शायद नहीं जानते कि जिस तरह हम पर सौर मण्डल के ग्रहों/उपग्रहों का प्रभाव पड़ता है, ठीक उसी तरह पेड़-पौधों पर भी उनका होता है।

एक दिन यह भी सिद्ध होने को है कि उन पर सुदूरवर्ती नक्षत्रों तथा ब्रह्माण्ड-रश्मियों का असर भी होता है।

हम कदाचित् यह नहीं जानते कि पेड़-पौधे कितने करिश्मेबाज होते हैं। हम उनकी जुबान भले ही न जानते हों; किन्तु वे हमारी भाषा जानते हैं। वे अपनी अतीन्द्रियता में तुरत-फुरत हमारे विचारों और हमारी भावनाओं का अनुवाद कर लेते हैं और तदनुसार बड़े कौशल के साथ उन पर अपनी अनुक्रिया सम्प्रेषित करते हैं।

पेड़-पौधों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे बिना आँखों के मनुष्यों से बेहतर देख सकते हैं;

बिना जीभ के चख सकते हैं, बिना नाक के सूँघ सकते हैं, और बिना कान के मनुष्य से कई गुना बेहतर सुन सकते हैं।

क्ली बेक्स्टर ने पौधों की संवेदनशीलता के सिलसिले में कहा है कि पौधे इंसान तो इंसान कमरे में जाला बुन रही मकड़ी तक की गतिविधियों पर आँख रख लेते हैं। इस सम्बन्ध में बेक्स्टर के प्रयोग और तज्जनित अनुभव चौंकाने वाले हैं। उनका अनुभव है कि पेड़-पौधे आदमी से कहीं अधिक अजीब दोस्त होते हैं। अभिभावक से एक बार हिलमिल जाने पर वे उससे इस कदर जुड़ जाते हैं कि फिर वह व्यक्ति चाहे दूसरे कमरे में हो, या कई इमारतों को छोड़ एक दूसरी ही दूरवर्ती इमारत में हो परस्पर संवाद-सूत्र बनाये रखते हैं। वे सम्बन्ध निभाना जानते हैं और आदमी की तुलना में कहीं अधिक बेहतर शैली में उन्हें निभाते हैं।

बेक्स्टर ने लिखा है कि एक बार जब उसकी उँगली कट गयी और उसने उसे आयोडिन में डुबोया तब कमरे में पोलीग्राफ से सम्बद्ध पौधे की अनुक्रिया स्पष्ट दिखायी दी। पोलीग्राफ ने बेक्स्टर की उँगली में मरने वाली कोशिकाओं की सूचना दी।

इससे यह साबित हुआ कि पौधे इतने संवेदनशील होते हैं कि कोशिका-स्तर पर वे अपने चारों ओर उपस्थित जीवन से जुड़े रहते हैं और सम्बन्धित वातावरण में होने वाले कोशिकीय या ऊतकीय परिवर्तनों की सूचना देते हैं।

बेक्स्टर तो यहाँ तक मानते हैं कि यह चेतना-धारा मात्र कोशिका के स्तर तक ही सीमित नहीं रहती वरन् आप्ठिक और उसके आगे के स्तर से भी संयुक्त रहती है। लगता है अब हमें पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया में इसलिए आना होगा चूँकि परम्परा से हम जिन अस्तित्वों को निर्जीव और बेजान समझते आये हैं, असल में, वे सप्राण और सजीव हैं।

कई बार तो हम गहन कुतूहल में-से गुजर जाते हैं यह देख कि जैसे ही कोई व्यक्ति पैना छुरा, या गंडासा लेकर बाँज के वृक्ष तक पहुँचता है, वृक्ष काँपने/धुजने लगता है; इस क्षण वह धारदार छुरा या गंडासा भले ही बाँज न देख पाता हो; किन्तु जो व्यक्ति छुरा/गंडासा लिये है उसके भीतर की हलचल और मंशा को वह पहिचान लेता है।

इसी तरह खरगोशों को नजदीक आया देख गाजर-के-पौधे काँपते देखे गये हैं। बेक्स्टर ने जब पौधों का जासूसी कुत्तों की तरह इस्तेमाल किया तो लोग हैरान रह गये। इतना ही नहीं उसने इनका रोगों के निदान में भी सफलतापूर्वक उपयोग किया। इससे यह सिद्ध होता है कि कई पेड़-पौधे अपराध-विज्ञानी, सत्यव्रती, हमदर्द और अच्छे चिकित्सक होते हैं। बेक्स्टर का एक संस्मरण, जिसे हम नीचे दे रहे हैं, किसी को भी अचंच भें डाल सकता है।

एक दिन जब वह अपने कुत्ते को एक कच्चा (अनिषेचित) अण्डा खिला रहा था, तब वह दंग रह गया। उसने देखा कि जैसे ही उसने अण्डे को तोड़ा, या दरकाया पोलीग्राफ से जुड़े एक पौधे ने अपनी अनुक्रिया अभिलेखित की। उसने लगातार बड़ी कठोर अनुक्रिया दी।

बेक्स्टर ने दूसरे दिन फिर वैसा ही प्रयोग किया और फिर वही नतीजा उसके सामने आ खड़ा हुआ। यह जानने के लिए कि अण्डा क्या सोचता है? उसने उसे गेल्बेनोमीटर से जोड़ दिया और स्वयं एक अन्य शोध में लीन हो गया।

गेल्बेनोमीटर लगातार नौ घंटों तक आलेखन करता रहा। उसने भ्रूण की धड़कनों को करौत की दाँतेदार रेखाओं में प्रदर्शित किया। इन धड़कनों की मूर्गी के हृदय की धड़कनों से लयबद्धता थी। अण्डा एक परचूनी की दुकान से खरीदा गया था। वह अनिषेचित (अन-सेया) था। बाद को जब बेक्स्टर ने उसे फोड़ा तब वह यह देख कर चकित रह गया कि उसके भीतर स्पन्दनों का लेखाजोखा रखने वाली कोई दृश्य व्यवस्था नहीं थी। लगता है उसने किसी ऐसे ऊर्जाक्षेत्र को आलेखित किया था जिसे आधुनिक विज्ञान समझने/समझाने में असमर्थ है।

बेक्स्टर ने फिर एक प्रयोग किया। उसने एक अण्डे को कार्डियोग्राफ पर रखा और उसी तरह के दूसरे अण्डे को कमरे के दूसरे सिरे पर गर्म पानी में डाल दिया। बेक्स्टर के इस आचरण की कार्डियोग्राफ पर रखे अण्डे ने तीखी प्रतिक्रिया दी। अपने साथी की मौत पर उसमें राज़ब की छटपटाहट थी।

बेक्स्टर इस घटना से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने पौधों पर प्रयोग करना बंद कर दिया। इस घटना से उसके मन में सृष्टि में जीवन-के-आविर्भाव को ले कर कई प्रश्न उठ खड़े हुए।

रूस में भी पेड़-पौधों को ले कर कई सफल/विस्मयजनक प्रयोग हुए हैं।

'प्रावदा' के संवाददाता वी. चेतकोव्ह ने तिमिरयाज़ेव कृषि विज्ञान अकादमी, मास्को में देखे एक प्रयोग का आँखों देखा हाल लिखा है। उसने

कहा है : जब जौ के एक अंकुर (कल्ले) की जड़ों को गर्म पानी में छोड़ा गया तब वह चीख पड़ा। सही है कि पौधे की इस दर्दभरी चीख को एक विशिष्ट संवेदनशील उपकरण की मदद से ही आलेखित किया गया था, किन्तु कागज़ की एक पट्टी पर करौत की दाँतों-जैसी पंक्ति बन गयी थी जिससे लगता था कि पौधे की मृत्यु के समय हुई छटपटाहट/तड़पन को आलेखित करते वक्त उपकरण में लगी लेखनी खुद सिहर गयी थी। यद्यपि जौ के कल्ले बाहर से उतने ही हरेभरे/ऊर्ध्वंग खड़े थे; किन्तु पौधा भीतर से टूट चुका था। लगता है किसी क्रिस्म की मस्तिष्क-कोशिकाओं से यह सूचना उपकरण पर अंकित हुई थी।

इसी अकादमी में शरीर-विज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रो. इवान इसिडोरोविच गुनार ने पेड़-पौधों में विद्युतीय आवेग की उपस्थिति को ले कर सैकड़ों प्रयोग किये और पुष्ट किया कि पेड़-पौधों में वैसे ही आवेग होते हैं जैसे मनुष्यों में। जब गुनार के एक प्रमुख सहायक ए. पेनिशिकन से 'प्रावदा' के उक्त संवाददाता ने सवाल किये तब उसने बताया कि पौधों पर प्रकाश और अंधकार की गहन प्रतिक्रिया होती है। उसने स्वयं द्वारा संपन्न एक प्रयोग का जिक्र करते हुए कहा कि जब उसने सूर्य-जितनी रोशनी देने वाले एक लैम्प के प्रकाश का इस्तेमाल एक पौधे पर पूरे दिन से अधिक की अवधि तक किया तब पता लगा कि पौधा बुरी तरह थक गया है और उसे आराम की ज़रूरत है। प्रयोगरत वैज्ञानिक ने बताया कि एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा जब पौधेघर (ग्रीन हाउस) में पौधे अपनी इच्छा से रोशनी बंद या चालू कर सकेंगे। शोधकर्ता को इससे विश्वास हो गया कि हो, न हो पौधों में स्मृतितत्त्व होता है। वे घटनाओं को याद रख सकते हैं।

अप्रैल १९७२ में स्विट्ज़रलैण्ड के एक अखबार ने बेक्स्टर और गुनार के प्रयोगों की जानकारीयाँ प्रकाशित कीं। ये अलग-अलग थीं; किन्तु पता नहीं कैसे दोनों वैज्ञानिक अज्ञाने एक-जैसे प्रयोग कर रहे थे ?

इसी मास स्विस लेख 'पौधों की आश्चर्यजनक दुनिया' का अनुवाद प्रकाशित हुआ।

दोनों वैज्ञानिकों का निष्कर्ष था कि पेड़-पौधे संकेत ग्रहण करते हैं और तदनुसार इनकी जानकारी विशेष चैनलों से अन्तःस्थित केन्द्र को प्रोसेस करते हैं; तदनन्तर उस पर से प्रतिक्रियाएँ बनती हैं और बहिर्जगत् में प्रकट होती हैं।

यह स्नायु-केन्द्र मूल ऊतकों (टिसूज) में कहीं स्थित होता है, जो मनुष्य की हृदय-वर्ती मांसपेशियों की तरह ही आकुंचित और विस्तृत होता है।

प्रयोगों से इस तथ्य का भी पता चला कि पेड़-पौधों में जीवन की एक सुनिश्चित लय होती है, अतः वे तब मर जाते हैं जब उन्हें निर्धारित क्षणों में विश्राम और शान्ति नसीब नहीं होती।

जगदीशचन्द्र बसु इस तथ्य को जानते थे कि पेड़-पौधों में क्लोम (गिल) या फेफड़ों के बिना श्वसन,

उदर के बिना पाचन, और मांसपेशियों के बिना हलन-चलन होती है, अतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनमें बहुत जटिल स्नायुतन्त्र के बिना भी पशु और मनुष्यों-जैसे

उद्दीपन और आवेग हो सकते हैं। उन्होंने अपने एक उपकरण 'ऑप्टिकल लीव्हर' द्वारा पेड़-पौधों में होने वाले आकुंचनों को आवर्द्धित किया।

यही उपकरण आगे चल कर 'ऑप्टिकल पल्स रिकॉर्डर' के रूप में विकसित हो कर पौधों में होने वाली हलचलों के आलेखन में सफल हुआ।

इस उपकरण की सहायता से बसु ने वनस्पति-जगत् के कुछ ऐसे रहस्य सामने रखे जिनके सम्बन्ध में सारी दुनिया अब तक अनभिज्ञ थी।

उन्होंने छिपकलियों, कछुओं, और मेंढकों तथा अंगूरों, टमाटरों तथा फल-सब्जियों के चर्म/छिलकों की अनुक्रियागत समानताओं को प्रदर्शित किया।

उनका निष्कर्ष था कि लगातार उद्दीपन से पशुओं और पौधों (मूली/छुईमुई) आदि की मांसपेशियाँ थक जाती हैं।

एक दिन उन्होंने देखा कि उनके एक प्रयोगाधीन पौधे की सारी हलचल समाप्त हो गयी है और वह उसी तरह ऐंठेन अनुभव कर रहा है जैसी पशु या मनुष्य

मृत्यु के क्षणों में महसूस करता है।

बसु के अनुसार पौधे मृत्यु के समय बहुत बड़ी विद्युत् राशि उत्सर्जित करते हैं।

उनका कथन है कि ५०० मटर ५०० वोल्ट विद्युत् विकसित कर सकते हैं। यह मामूली नहीं है, किन्तु इन्हें एक शृंखला में संयोजित करना काफी मुश्किल होता है।

इस तरह पेड़-पौधों की दुनिया के सम्बन्ध में जो गलतफहमी और अज्ञान व्याप्त है उसे विज्ञान के

सूक्ष्मतर/अतिसंवेदनशील प्रयोगों ने अब काफी हद तक दूर कर दिया है।

जैनधर्म शताब्दियों से मानता आ रहा है वनस्पतियाँ मनुष्यों की तरह ही श्वसन करती हैं, आहार लेती हैं, और अपने अस्तित्व के बारे में सजग रहती हैं।

जैनागम में एकेन्द्रिय जीवों—

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिक की विस्तार से चर्चा की गयी है।

यदि जैनधर्म में निरूपित जैव तथ्यों और आधुनिक विज्ञान द्वारा पुष्ट जैव तथ्यों की तुलना की जाती है तो कई

रहस्य प्रकट हो सकते हैं और धर्म की वैज्ञानिकता को बल मिल सकता है।

—डॉ. नेमीचन्द्र जैन

(जीव का स्वरूप : जैन विश्लेषण; पृष्ठ १८ का शेष)

सींग में उत्पन्न होने वाली जटा की शकल की वनस्पति 'कवक' है। भोजन और काँजी आदि पर लगने वाली फफूँद 'कुहन' है।

एक अन्य आधार पर भी वनस्पति को वर्गीकृत किया गया है -

जिसमें फली लगती है वह 'वनस्पति' है।

जिसमें फूल और फल लगते हैं वह 'वृक्ष' है।

फलों के पक जाने पर जो पेड़-पौधे अस्तित्वशेष हो जाते हैं वे 'औषधि' हैं।

गुल्म और बल्ली को 'बीरुध' कहा गया है।

जिनकी डालियाँ छोटी होती हैं और जिनकी जड़ें जटा की शकल की होती हैं वे झाड़ू 'गुल्म' कहलाते हैं।

जो पेड़ पर चढ़ती हैं और जिनका आकार बलय-जैसा होता है वे 'बल्ली' कहलाती हैं।

संज्ञा सहज वृत्ति/अं.इंस्टिक्ट को कहते हैं। ये चार तरह की हैं :

आहार, भय, मैथुन*, परिग्रह। वनस्पतियों में भी ये चारों पायी जाती हैं।

पर्याप्त एक रोचक शब्द है। इसी से पर्याप्ति शब्द बना है।

जिस जीव में कायिक क्रियाओं के लिए अपेक्षित शक्तियों की पूर्णता प्रकट हुई है वे जीव पर्याप्तक हैं, जिनमें नहीं हुई है, वे अपर्याप्तक हैं। पर्याप्ति शक्ति-विशेष की पूर्णता की संज्ञा है।

लोक-रचना में पुद्गल की एक बृहत और आश्चर्यजनक भूमिका है। इसे तनिक गहरे में जानना चाहिये।

जो स्वभावज्ञ/स्वरूपज्ञ हैं वे पुद्गल के रोएँ-रोएँ/रेशे-रेशे को जानते हैं।

भेद आदि के निमित्त से जिनमें पूरण (नये परमाणुओं का संयोग) और गलन (संयुक्त परमाणुओं का वियोग) होता है, वे पुद्गल हैं।

पुद्गल के दो भेद हैं : अणु, स्कन्ध।

स्कन्ध त्रिविध है : स्कन्ध, देश, प्रदेश। स्कन्ध अनन्त परमाणुओं के समूह की संज्ञा है। देश स्कन्ध का आधा होता है। प्रदेश देश के अर्द्धभाग को कहा जाता है। पुद्गल हैं-शब्द, संस्थान, सूक्ष्मत्व, स्थौल्य, बंध, तम, छाया, उद्योत, भेद। शब्द से सब वाक्फि हैं। 'संस्थान' आकृति को कहते हैं। परमाणुओं में अन्त्य सूक्ष्मता होती है। स्थौल्य सूक्ष्म का विरोधी है। 'तम' अन्धकार को कहते हैं। शरीर

* दे. द प्राइवेट लाइफ ऑफ प्लांट्स; रोजर ग्राउंडस; १९८०

दे. इसी ग्रंथ में कन्हैयालाल लोढ़ा का लेख; पृ. २२-२६.

आदि के कारण प्रकाश का रचना 'छाया' है। सूर्य का उष्ण प्रकाश 'आतप' है। चन्द्रमा/रत्न आदि का प्रकाश 'उद्योत' है। भेद छह हैं। लकड़ी आदि के चीरने पर जो बुरादा निकलता है वह 'उत्कर' है। उड़द, मूंग आदि की चुन्नी को 'चूर्णिका' कहते हैं। जौ/गेहूँ आदि के आटे को 'चूर्ण' कहा जाता है। घड़े आदि के टुकड़ों को 'खण्ड' कहते हैं। गर्म लोहे पर घन-प्रहार से उत्पन्न अग्निकण को 'अणुचटन' कहा जाता है। मेघघटा आदि का बिखरना 'प्रतर' कहलाता है। पुद्गल शब्द आदि से युक्त होते हैं। स्कन्ध भेद से, संघात से, या भेद-संघात दोनों से उत्पन्न होते हैं; किन्तु अणु भेद से ही उत्पन्न होता है।

परमाणु क्या है ?

वही जिसका आदि है, वही जिसका अन्त है, वही जिसका मध्य है, जो इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं है, तथा जिसका विखण्डन संभव नहीं है वह परमाणु है। कर्म भी पुद्गल ही हैं। इनकी रचना कार्मण वर्गणाओं से होती है। कर्म आठ हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय। कर्म आत्मा की स्वाभाविक/सहज शक्ति को आवृत/सीमित करते हैं।

पर्याप्तियाँ छह हैं। आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति, मनःपर्याप्ति। एकेन्द्रियों में चार पर्याप्तियाँ होती हैं :

आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास।

दो से ले कर असंज्ञी मन-रहित पंचेन्द्रिय जीवों तक पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं।

संज्ञी मन-सहित पंचेन्द्रिय के छहों होती हैं।

पर्याप्ति का शब्दार्थ है — शक्ति की पूर्णता।

जब जीव विग्रहगतिक यात्रा समाप्त कर नवीन शरीर-रचना में कारणभूत नोकर्म वर्गणा को ग्रहण करता है तथा उसे खल/रसरूप परिवर्तित/परिणमित करने की क्षमता संपादित करता है तब शक्ति की उस पूर्णता को आहार पर्याप्ति कहते हैं।

आहार पर्याप्ति के बाद जो खल/रस प्राप्त हुआ उसे क्रमशः अस्थि और कठोर अवयव रूप; तथा रक्त रूप में परिणमित करने की जो क्षमता प्राप्त होती है उसे शरीर पर्याप्ति कहते हैं। इसी नोकर्स वर्गणा के स्कन्ध में से कुछ वर्गणाओं को अपनी-अपनी इन्द्रियों के स्थान पर उस-उस आकार में रूपान्तरित करने की जो क्षमता है उसकी तत्सम्बन्धी पूर्णता को इन्द्रिय पर्याप्ति कहा गया है।

कुछ स्कन्धों को श्वासोच्छ्वास में रूपान्तरित (ट्रांसफॉर्म) करने की क्षमता की परिपक्वता को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

जो भाषा वर्गणा वचनरूप परिणमन-योग्य है, उसे उस रूप परिणमित करने की शक्ति के संपूर्ण होने को भाषा पर्याप्ति कहा जाता है। मनोवर्गणा के परमाणुओं को द्रव्यमन

के रूप में परिणमित करने की शक्ति के परिपाक को मनःपर्याप्त कहते हैं।

इसी क्रम में हम प्राण पर विचार करते हैं। जिनके संयोग से जीवन और जिनके वियोग से मरण होता है वे प्राण हैं।

प्राण दस हैं : पाँच इन्द्रियाँ, वचनबल, कायबल, मनोबल, श्वासोच्छ्वास, आयु। इनमें से एकेन्द्रिय जीव के पर्याप्तक दशा में चार और अपर्याप्तक अवस्था में तीन प्राण होते हैं। अपर्याप्तक अवस्था में श्वासोच्छ्वास अनुपस्थित रहता है।

वैसे जीव की सत्ता चिरन्तन/शाश्वत है। उसका जन्म-मरण नहीं है। जन्म-मरण शरीर का ही संभव है, आत्मा का असंभव है। यहाँ द्रव्य और पर्याय को समझ लेना चाहिये। द्रव्य ध्रुव है, पर्याय अ-ध्रुव है। उत्पाद और व्यय की प्रक्रिया से द्रव्य का रूपान्तरण होता है। रूप बदलता है, रूपायित कभी नहीं बदलता। रूप के लिए पारिभाषिक शब्द है पर्याय। इन पर्यायों में द्रव्य ही रूपायित होता है।

जैनधर्म/दर्शन ने जीव के अन्तर्मुख और बहिर्मुख दोनों ही व्यक्तियों की समीक्षा की है। बाह्य व्यक्तित्व की संरचना में पुद्गल की भूमिका उल्लेखनीय है।

शरीर पुद्गलजनित है। शरीर की बहुविध क्षमताओं का संघटन पुद्गल परमाणुओं से होता है। शरीर का सारा कारोबार आत्म-संपृक्ति में चलता है।

तत्त्व सात हैं। पदार्थ नौ हैं।

जीव, अजीव; आस्रव, बंध, सँवर, निर्जरा, मोक्ष तत्त्व हैं।

उक्त सात में पाप/पुण्य जोड़ने से नौ पदार्थ बनते हैं।

कार्मण वर्गणाएँ आती हैं, ठहरती हैं, संवृत होती हैं, खिरती-खपती हैं, और अन्ततः प्रयत्न/पुरुषार्थ होने पर जीव मोक्षगामी होता है। जन्मजमान्तर की श्रृंखला जब तक समाप्त नहीं होती, तब तक जीव को इस या उस शरीर को ओढ़ना पड़ता है। कुछ लोग पूछते हैं आत्मा का आकार क्या है? वह अमूर्त है – किन्तु उसकी व्याप्ति के सिलसिले में कहा गया है कि यद्यपि वह लोक-प्रमाण है तथापि स्वदेहप्रमाण है। जितनी/जैसी देह, उतनी/वैसी व्याप्ति। निगोदिया जीव से ले कर व्हेल मछली तक का शरीर आत्मा का निवास बनता है।

वस्तु-स्वातन्त्र्य में से आत्म-स्वातन्त्र्य का तथ्य प्रसूत है। जीव/आत्मा स्वतन्त्र है। उस पर किसी का नियन्त्रण-नियमन नहीं है। वह खुद-ब-खुद अपना नियन्त्रण और नियामक है।

चौदह जीवस्थान/जीव-समास हैं। इनके द्वारा हम जीवों और उनकी जातियों को वर्गीकृत रूप में जान सकते हैं।

मनुष्य का आन्तरिक व्यक्तित्व भी महत्त्वपूर्ण है।

आन्तरिक व्यक्तित्व की घड़न गुण से होती है। व्यक्तित्व के इस भाग पर पारिणामिक नियमन होता है।

दृष्टव्य है कि व्यक्ति में कितने/कैसे सूक्ष्म/स्थूल आरोह-अवरोह/चढ़ाव-उतार घटित होते हैं।

जीव का अन्तर्मुख व्यक्तित्व कुछ खास स्थितियों पर निर्भर करता है—
सम्यक्त्व/मिथ्यात्व, संयत/असंयत, प्रमत्त/अप्रमत्त, संयोग/अयोग — ये सारी
अन्तःस्थितियाँ हैं। इन्हें चौदह गुणस्थानों के रूप में प्रवर्तित किया गया है।
गुणस्थान क्या है? मोह और योग के निमित्त से आत्मा के गुणों की जो तरतमता
है, वह गुणस्थान है।

यह आभ्यन्तरिक रसायनशास्त्र है।

शरीर का रसायनशास्त्र इससे भिन्न है।

गुणस्थान हैं—मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र, असंयत, देशसंयत, प्रमत्तसंयत,
अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मकषाय, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय,
योगी, आयोगी।

लेश्या मनोवैज्ञानिक तथ्य है।

कषाय आत्मा की गुणवत्ता का नाश/घात करती है।

लेश्याएँ छह हैं—

कृष्ण/तीव्र क्रोध, नील/अविवेक, तृष्णा; कापोत/दूसरों पर रोष, दूसरों की निंदा,
दूसरों से ईर्ष्या; पीत/सविवेक, समत्वप्रेरित व्यवहार; पद्म/त्याग, भद्रपरिणाम;
शुक्ल/निस्संगता, सब पर सवन समत्व।

उपशम, क्षयोपशम, क्षय, उदय, और परिणाम जीव के स्वतत्त्व हैं।

पारिणामिक भाव सभी जीवों में जीवत्व के रूप में पाया जाता है।

ये पाँचों जीव की अस्मिताएँ हैं। इन्हें एक रूपक द्वारा समझना चाहिये।

मानिये, पानी और कीचड़ गड्ढमड्ढ हैं। जैसे फिटकरी घुमाने से कीचड़ नीचे बैठ
जाती है और पानी निर्मल हो जाता है; ठीक वैसे ही कर्मों के उपशम से कर्म की
शक्ति प्रकट नहीं हो पाती है। कर्म की शक्ति के प्रकट न होने को उपशम कहते हैं
तथा आत्मा की इस भावभूमिका को औपशमिक कहते हैं।

गँदले पानी में-से कुछ कीच का तल में बैठ जाना और कुछ का न बैठना अर्थात् पानी
का स्वच्छ-अस्वच्छ बने रहना क्षयोपशम का उदाहरण है। जब कर्मों की क्षय-उपशम
अवस्था होती है तब उसे क्षयोपशम कहते हैं; आत्मा की इस मिश्रित भूमिका को
क्षायोपशमिक कहते हैं।

जब पानी में से कीचड़ बिलकुल अलग हो जाता है तब उसे कर्मों के समूल नाश का
उदाहरण समझना चाहिये। जब आत्मा कंचन नीर हो तो उसकी वह अस्मिता
क्षायिक कहलाती है।

स्थिति को पूरा करके कर्मों के फल देने को उदय कहते हैं तथा इस उदय से जो
अस्मिता प्रकट होती है उसे औदयिक भाव कहा जाता है।

(शेष पृष्ठ ८० पर)

दे सकते हैं कुछ

प्रतिष्ठा/अंजनशलाका/पंचकल्याणक/गजरथ

आप पूछेंगे ऐसी क्या खामी-खराबी देखी है इन उत्सवों-समारोहों में? मैं पूछूँगा: क्या आपने नहीं देखीं? जो दम्पति इन्सान के माता-पिता कहलाने लायक नहीं हैं वे चन्द सिक्कों के बल पर भगवान् के माता-पिता बनते देखे गये हैं इस लीला में। बुरा न मानें इस सत्य से कि जिनके हाथ जिन्दगी की नाड़ी पर कभी नहीं रहे, वे धर्म-ध्वज की डोरी तक कैसे/किस करिश्मे से पहुँच जाते हैं? वर्षों से पूजा-प्रक्षाल कर रहे व्यक्ति को इन्द्र बनने को क्यों नहीं न्योता जाता? पाँच सौ एक, या इससे न्यूनाधिक देने वाले तो इन्द्र बन ही जाते हैं।

—सुरेश सरल

कब कहता हूँ कि वर्तमान में जो हो रहा है उसे मेरे चश्मे से देखा जाए तभी वह समझ में आ सकेगा? जिसे/जिस कार्य को, लाख-लाख आँखों से देखा समझा जा चुका है उसे अब किसी भी रंग में रंग दिया जाए—पहिचान में आ ही जाता है। पहले 'प्रतिष्ठा', 'पंचकल्याणक', 'गजरथ' के पृथक्-पृथक् अर्थ रहे होंगे; पर अब? अब तो सब का एक ही अर्थ है, एक ही भावार्थ है, एक ही सन्दर्भ है, एक ही प्रसंग है—'ये वे कार्य हैं जो व्यक्ति, को अर्थ और मान एक साथ प्रदान कराते हैं'। गत एकाधिक दशक से यही-यही अर्थ देखने मिल रहा है।

इन शब्दों की शास्त्रीय-मान्यताएँ विशिष्ट हो सकती हैं, पर प्रचलित-मान्यताएँ इतनी ही रह गयी हैं। पाषाण-मूर्ति की स्थापना के पार्श्व में 'व्यक्ति' अपनी स्थापना में जुटे पाये गये हैं प्रतिष्ठा/पंचकल्याणक/गजरथ/अंजनशलाका के पाण्डालों में। बुरा न मानें, वह 'व्यक्ति' है—श्रावक, यानी सेठ, साहूकार, पण्डित, अफसर वगैरह-वगैरह। अब तो साधु-सन्त भी जी-खोल कर बिराजे देखे जा सकते हैं, जो कल तक सेठों/पण्डितों के इशारे पर नहीं चलते-निकलते थे। अर्थ और मान का सही-सही बँटवारा यहीं तो होता है—परिग्रही की तरफ 'अर्थ' चला जाता है और सन्त की तरफ 'गुणगान'।

आपके शास्त्र में प्रतिष्ठा/पंचकल्याणक/गजरथ/अंजनशलाका का जो भी अर्थ बतलाया गया हो, हमने जो देखा है वह कह रहे हैं। प्रतिष्ठा का शाब्दिक अर्थ है—मानमर्यादा/दिव-प्रतिमा की स्थापना/आदर-सत्कार/स्थान/स्थिति/पृथ्वी/आश्रय/

शरीर; परन्तु हमारे समाज में इसका एक ही अर्थ चल रहा है — कहें, कस कर चल रहा है — 'तीर्थंकर-प्रतिमा की स्थापना'। लोग प्रतिष्ठा-महोत्सव के बल पर अपनी वैयक्तिक प्रतिष्ठा बढ़ा रहे हैं और अपने ही द्वारा सुझायी गयी/सजायी गयी इबारत के प्रतिष्ठा-पत्र प्राप्त कर रहे हैं और पा रहे हैं प्रतिष्ठान। मतलब यह कि प्रतिष्ठा-प्रसंग सम्पन्न कराइये और प्रतिष्ठित हो जाइए। धार्मिक या आध्यात्मिक होता तो कोई दीखा नहीं, जो दीखा वह दिन में दो-चार घंटों के लिए, वह भी दस-ग्यारह दिनों तक, बस। हर परिग्रही अपने-आपको प्रतिग्रही के रूप में रखता है समाज के समक्ष और बना रहता है — प्रतिष्ठापयिता।

बिलकुल यही स्वरूप है पंचकल्याणक का। एक युवक कह रहा था — 'जिस कार्य से पंचों का कल्याण हो, सो पंचकल्याणक'। यह एक हल्के किस्म का फिकरा कहा जा सकता है; पर मैं पूछता हूँ इसे जन्म देने पर बाध्य किसने किया?

वर्तमान का पंचकल्याणक जाने क्यों 'पंचक' बन कर रह गया है, जिस तरह ब्रह्माण्ड के नक्षत्रों में पाँच नक्षत्र 'पंचक'* अशुभ माने जाते हैं ठीक उसी तरह विभिन्न धार्मिक कार्यक्रमों के मध्य पंचकल्याणकों का स्वरूप अ-शिव दीखने लगा है। 'पंचकल्याण' का अर्थ है — लाल या पीले रंग का घोड़ा जिसके पैर या सिर सफेद हों। आज का सम्पन्न आदमी पंचकल्याणक के नाम पर ऐसे ही अश्व का आरोही बना चाहता है, जो ऐड़ लगाते ही मान-मर्यादा और आदर-सत्कार के गाँव में पहुँचा दे। बड़ी बात यह भी है कि वे बे-रोकटोक पहुँच भी तो रहे हैं।

गाय से उत्पन्न पाँच पदार्थों में दूध, दही, घृत, मूत्र और गोबर प्रमुख हैं जिन्हें 'पंचगव्य' कहा जाता है। उधर उन्माद या फैशन से जन्मे पंचकल्याणकों में पाँच जिन्सें देखने को मिल रही हैं — प्रचार, प्रतिष्ठा, अभिनन्दन-पत्र, पैसा और भीड़।

'प्रचार' दूध की तरह हर जगह मिल जाता है; 'प्रतिष्ठा' चाहे जिन हथेलियों पर दही की तरह जमवायी जा सकती है; 'अभिनन्दन-पत्र' बरनी में घी की तरह चाहे जिस कक्ष, में लगा मिल जाता है, क्योंकि 'पैसा' गोमूत्र की तरह इनके लिए बहाया जाता है। और भीड़? भीड़ की तुलना के लिए जो शब्द बचा है, वह है गोबर। भीड़ को गोबर न कहेंगे तो क्या कहेंगे? जीवन में कई पंचकल्याणकों में जो व्यक्ति उपस्थित रहा हो पर मरते-मरते पंच मकार — मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन — न छोड़ पाया हो, उसे गोबर (गोबर-गणेश) से अधिक क्या कहा जाएगा? जो पंचकल्याणक का विशाल आयोजन सम्पन्न कर लेने के बाद भी पंचरत्न 'नीलम, हीरा, मणि, मोती, मूंगा — जैसे मृत पदार्थ पा लेने की होड़ में लगा हो — और 'तीन-रत्नों' (रत्नत्रय) को भुला बैठा हो, उसे क्या कहेंगे? क्या कहेंगे आप उन पंचों को जो 'पंचशील' भूल कर 'पंचहजारी' बनने के चक्कर में हैं?

* ज्योतिष में धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद और रेवती नक्षत्र अशुभ माने गये हैं।

‘पंचकल्याण’ से ‘गज’ उतना ही बड़ा होता है जितना पंचकल्याणक से गजरथ। जो श्रावक कारों पर बैठे-बैठे ऊब जाते हैं वे गजरथों पर बैठने लगते हैं। कुछ रईसों के लिए गजरथ का आयोजन, एक कार खरीदने से अधिक नहीं है। यह मैं नहीं कह रहा, तुम्हारे देश के ही एक रईस ने कहा था — ‘हाँ, इस वर्ष गजरथ-महोत्सव’ करा दूंगा... न सही एक लम्बी कार’। तो, जहाँ का आयोजन ही ऐसे विचारों पर आधारित हो, वहाँ सेवा/पुण्य/संस्कृति/धर्म की बातें कैसे टिकी रह सकती हैं? जो स्वतः ऐसा गज हो जिस पर कोई गजबाँक/अंकुश न हो, वह सही-सही गजरथ-उत्सव कैसे मना पायेगा? जो मना लेते हैं उनके रथ से नहीं; गजपति की कृपा से चलते हैं। ऐसे व्यक्तित्व गजदन्त की तरह बाहर निकले रहने में/प्रदर्शन में अपनी श्रीशोभा मानते हैं।

गजरथ के आयोजन हों, पंचकल्याणक हों, प्रतिष्ठा-महोत्सव हों, मैं उनका विरोधी नहीं हूँ, पर उनका एक आदर्श स्वरूप तय कर लिया जाए, फिर भीड़ एकत्र की जाए। एक आयोजन से सामान्य आदमी को क्या-क्या लाभ पहुँचाये जा सकते हैं? यह निश्चित करना होगा। दानवीरों की तरह उन्हें भी महत्व देना होगा जो दान से ऊपर तपश्चर्या में रत हैं। ग्यारह सौ की राशि देने वाला यदि अभिषेक के लिए कलश प्राप्त कर लेता है तो वह उसे भी उतनी ही श्रद्धा से दिया जाना चाहिये जो ग्यारह व्रत करने का संकल्प लेता है या ग्यारह लोगों के बीच अधिक विद्वान् है।

मनु ने कहा है — धन, बन्धु, आयु, कर्म और विद्या — ये पाँच मान के स्थान हैं। इनमें धन से बन्धु, बन्धु से आयु, आयु से कर्म, और कर्म से विद्या अधिक आदर के योग्य हैं। सच, मुझे प्रतिष्ठा-आयोजन करने वालों से खुनस नहीं है, है उनसे जो गजरथ का पाण्डाल और पाण्डाल की भीड़ देख कर ही कुछ करने-धरने का ‘मूड’ बनाते हैं, चाहे वह दान हो, चाहे अभिषेक और चाहे पूजा-पाठ।

एक बड़ा वर्ग अंजनशलाका जैसे आयोजनों/उत्सवों के लिए बिछा-बिछा रहता है, मगर इनकी और उनकी मानसिकता में कोई बड़ा अन्तर नहीं होता। जितना आडम्बर यहाँ, उतना वहाँ। न ये कम मिले, न वे। सब एक थैली के; एक शैली के।

लेख को पूर्ण मानवीय तल देते हुए यह कहना चाहता हूँ कि रुपये देकर इन्द्र, सौधर्म इन्द्र, कुबेर, भगवान् के माता-पिता आदि बनने वाले सज्जन कार्यक्रम के बाद अपने आचरण नीचे न आने दें; एक छाप-सी लगी दिखलायें उनकी दिन-चर्या पर। उन्हें देख कर साधारण आदमी भी जान जाए कि वह सामान्यों से

अधिक धर्मज्ञ हैं। मुकरात ने कहा था — संसार में आदरपूर्वक जीने का सबसे सरल और शर्तिया उपाय यह है कि हम जो कुछ बाहर से दिखना चाहते हैं, वैसे ही वास्तव में हों।

यह तभी संभव है जब हमारी खराबियाँ/हमारे आयोजनों की खराबियाँ/त्रुटियाँ/लापरवाहियाँ मूल रूप से समाप्त कर दी जाएँ।

आप पूछेंगे ऐसी क्या खराबी देखी है इन उत्सवों-समारोहों में? मैं पूछूँगा, क्या आपने नहीं देखी? जो दम्पति इन्सान के पिता कहलाने लायक नहीं हैं; वे चन्द सिक्कों के बल पर भगवान् के माता-पिता बनते देखे गये हैं इस लीला में। बुरा न मानें इस सत्य से कि जिनके हाथ ज़िदगी-भर नाड़े पर रहे हों, वे धर्म-ध्वज की डोरी तक कैसे पहुँच जाते हैं? वर्षों से पूजा-प्रक्षाल कर रहे व्यक्ति को इन्द्र बनने को क्यों नहीं कहा जाता? पाँच-सौ-एक देने वाले तो बन ही जाते हैं।

मंच पर जहाँ धनशाली व्यक्ति को अनुग्रह के साथ बैठाला जाता है, वहाँ समाज के कवि, कलाकार, पत्रकार, पण्डित, पहलवान को भी सादर स्थान देना चाहिये। वे समाज के संरक्षक सिद्ध होते हैं, उन्हें पूर्ण सम्मान से आमन्त्रित किया जाना चाहिये। कलशों, जयमाला, ध्वज, कुबेरपद आदि की बोलियाँ लगायी जाती हैं सो लगायी जाएँ; परन्तु उनसे प्राप्त धनराशि का बहु-उद्देश्यीय उपयोग तय किया जाए। 'रुपया आया और अंक बैंक में जमा' का सिद्धान्त शिथिल किया जाए। निजी धन्धों में लगा कर भगवान्/ट्रस्ट/सभा को ब्याज देते रहने का उपक्रम समाप्त किया जाए। धन-राशि बैंक में रखने या निजी धन्धों में लगा लेने वालों को बदनीयत करार दिया जाए। जिस पैसे से समय पर समाज-सेवा नहीं की जाती उसे संगृहीत करने से क्या लाभ? और फिर हम तो अपरिग्रह के उपासक हैं। उसे तो तुरन्त ही पीड़ित मानवता की सेवा में फैला दिया जाए। औषधालय में दवाएँ बढ़ायी जाएँ, डॉक्टर/कम्पाउण्डर/नर्स की संख्या बढ़ायी जाए, उपकरण/यन्त्र खरीदे जाएँ। रुपये पाठशाला के हित में लगाये जाएँ; संगीत, सिलाई-बुनाई की कक्षाएँ चलायी जाएँ, पुस्तकालय-वाचनालय का विस्तार किया जाए, उच्च कोटि के ग्रन्थ/विशेषांक खरीद कर लोगों में अच्छा पढ़ने की भावना जगायी जाए। अति दीन लोगों को प्रतिवर्ष धन्धे मुहैया कराये जाएँ। नये मन्दिरों की रचना से पूर्व पुराने मन्दिरों का सही-सही जीर्णोद्धार कराया जाए। जिनकी हालत अधिक खस्ता हो चुकी हो, उन्हें समाप्त कर दिया जाए, ज़बरन घसीटने में मानवीय-लाभ भी नहीं है, सो उनकी मूर्तियाँ अन्य नये मन्दिरों में स्थानान्तरित कर दी जाएँ। हर शहर में मेडिकल कॉलेजों के समीप सुविधायुक्त धर्मशालाएँ बनवायी जाएँ, हर नगर में विशाल 'नगर-कक्ष' (टाउन-हॉल) बनाये जाएँ जो बहु-उपयोगी सिद्ध हों जिनमें सभा भी हो जाए, बारातें भी ठहर जाएँ, वाचनालय भी स्थापित हो जाएँ, संगीत-

(शेष पृष्ठ ८९ पर)

खत : जो अन्तिम नहीं है

मेरा एक मित्र मुझे एक सुश्रावक की कथा सुना रहा था जो कि मात्र एक परात पानी में ही नहाना-धोना निपटा लेते हैं; पर सम्पादकजी, जीवन एक परात पानी नहीं है। एक परात पानी से अहिंसा का परीक्षण नहीं हो सकता। वास्तविकता तो यह है कि जब-जब अहिंसा की परीक्षा का समय आया, तब-तब हम भाग खड़े हुए हैं। हमने अहिंसा से हिंसा का प्रतिरोध नहीं किया।

सम्पादकजी,

मेरा खत 'खत, जो अन्तिम नहीं' है मेरे सम्मुख है। नहीं जानता आपने क्या सोच कर यह शीर्षक रखा; किन्तु मुझे यह शीर्षक उत्तेजित कर रहा है कुछ सोचने को, आमन्त्रित कर रहा है कुछ लिखने को।

लेकिन अभी जो कुछ लिख रहा हूँ वह आमन्त्रित हो कर नहीं, विवश हो कर लिख रहा हूँ। कारण, मेरे सामने एक विकट प्रश्न, एक विकट समस्या मुँह बाये खड़ी है। किसी भाँति इसका समाधान नहीं कर पा रहा हूँ। क्या आप, या 'तीर्थकर' के प्रबुद्ध पाठक इस प्रश्न का उत्तर, इस समस्या का समाधान मुझे देंगे?

कुछ दिन पूर्व मैंने 'जैन जर्नल' के एक अंक में भाई श्री मिश्रीलालजी जैन की एक कथा 'कालल देवी' का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया था। भाईश्री एक जगह लिखते हैं : "शूर-श्रेष्ठ चामुण्डराय शत्रु के मुण्डों का ढेर लगा देते थे। उनके पराक्रम से प्रभावित हो कर गंगावंशीय शासकों ने उन्हें 'वीर मार्तण्ड', 'रणरंग सिंह', 'भुजविक्रम' जैसी उपाधियों से विभूषित किया था।... सच तो यह है कि वीर चामुण्डराय वीरता और अहिंसा की युगीन प्रतिमा थे।"

इस पर मेरे एक मित्र ने प्रश्न उठाया कि चामुण्डराय यदि अहिंसा की युगीन प्रतिमा थे तो वे शूरवीर नहीं हो सकते और यदि वे शूरवीर थे तो अहिंसा की युगीन प्रतिमा नहीं हो सकते।

चामुण्डराय प्रातःस्मरणीय आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती के शिष्य थे। सुश्रावक थे। अवश्य ही वे श्रावक के बारह व्रतों में प्रथम व्रत 'प्राणातिपात विरमण' का भलीभाँति पालन करते थे। यदि करते थे तो शूरवीरता प्राप्त कैसे कर सके? किन्तु हाँ, शूरवीरता प्राप्त करने के पश्चात् वे जैन बने हों तो बात अलग है।

मेरे मित्र की दलील यह है कि जीवघात किये बिना शूरवीरता अर्जित नहीं की जा सकती।

सम्पादकजी, मैं अपने मित्र की इस बात को काट नहीं सका। कारण, जिसने कभी रक्तपात नहीं किया, रक्तपात होते नहीं देखा, वह रक्तपात कर भी

नहीं सकता। क्या आप, मैं, कोई भी जैनी देश-रक्षा तो दूर; आत्म-रक्षा के लिए भी कभी किसी की हत्या कर सकते हैं? शायद नहीं।

हम कहने को तो कह देते हैं कि देश के आक्रान्त होने पर देश-रक्षार्थ हम लड़ सकते हैं; पर सत्य तो यह है कि विवश हो कर यदि हमें युद्ध में जाना ही पड़े तो या तो हम युद्ध छिड़ते ही भाग छूटेंगे या फिर मारे जाएंगे।

मुझे मेरे पिताजी की बात याद आ रही है। वे देश-विभक्त-कालीन दंगे के समय राजस्थान जा रहे थे। भरतपुर के नंदुई स्टेशन पर खड़ी ट्रेन के कम्पार्टमेंट में घुस कर हिन्दू लोग भागते हुए मुसलमानों को मार रहे थे। वे यह रक्तपात देख नहीं सके अतः ट्रेन से नीचे उतर आये। स्टेशन पर खड़ी मिलिट्री में-से किसी ने गोली चलायी और वह गोली उन्हें लग गयी; फलतः मारे गये। वे यदि नीचे नहीं उतरते तो शायद नहीं मारे जाते; पर वह कहाँ सम्भव था? हम रक्त देख नहीं सकते - रक्त से घबड़ाते हैं।

मुझे पता नहीं देश की रक्षा-वाहिनी में कितने जैन नौजवान हैं? शायद एक भी नहीं होगा।

यह इस्केपिज्म या पलायनवाद है। अन्य अस्त्र-शस्त्र ले कर हमारी सीमा पर तैनात रहें ताकि हम अहिंसक जीवन जी सकें; यह पलायनवाद नहीं तो क्या है?

मानता हूँ अहिंसा में भी एक शक्ति होती है, एक बल होता है; पर हममें तो वह बल और शक्ति भी नहीं है। जब गाँधीजी अहिंसा के बल पर १९४७ में नोआखाली के दंगा-पीड़ित अंचलों में भ्रमण कर रहे थे तब हमारे आचार्यगण दंगा छिड़ते ही लाहौर से पहला प्लेन पकड़ कर दिल्ली भाग आये थे। क्यों नहीं वे अहिंसा के बल पर वहाँ डटे रहे? क्यों नहीं कहा कि हम तब तक यहाँ से नहीं हटेंगे जब तक यहाँ का एक-एक व्यक्ति सुरक्षित नहीं हो जाता है। क्या उन्हें अपने जीवन का इतना मोह था? लगता है हमारी यह अहिंसा एक व्यसन है। अहिंसा क्या है, शायद हम यह जानते ही नहीं; अहिंसा में विश्वास तो बहुत दूर की बात है।

मेरा एक मित्र मुझे एक सुश्रावक की कथा सुना रहा था जो कि मात्र एक परात पानी में ही नहाना-धोना निपटा लेते हैं। पर सम्पादकजी, जीवन एक परात पानी नहीं है। एक परात पानी से अहिंसा का परीक्षण नहीं हो सकता। वास्तविकता तो यह है कि जब-जब अहिंसा की परीक्षा का समय आया, हम भाग खड़े हुए हैं। हमने अहिंसा से हिंसा का प्रतिरोध नहीं किया।

कहा जा सकता है कि अस्त्र-चालन की शिक्षा प्राप्त करने पर हम भी अस्त्र धारण कर सकते हैं। बात ठीक है। पर अस्त्र-चालन-शिक्षा प्राप्त करें भी तो कैसे? हम तो जीव-विज्ञान सीखने के लिए स्कूल-कॉलेज में जो मेंढक आदि

चीरे-फाड़े जाते हैं उसका भी विरोध करते हैं, यदि चीरा-फाड़ा नहीं जाए तो वह विद्या हम अर्जित कैसे करें ? जीव-विद्या-विशारद शल्य-चिकित्सक कैसे बनें ? यही बात सैनिक-प्रशिक्षण के विषय में भी लागू है। घास-पत्तों पर वार कर कोई 'वीर-मार्तण्ड', 'रणरंग-सिंह' या 'भुजविक्रम' नहीं बनता। उड़ती हुई चिड़िया, भागते हुए हिरण को मार गिराये बिना तीर का निशाना नहीं सधता। भुजाओं का विक्रम तभी मालूम होता है, जबकि एक ही वार में मोटी-ताजी भैंस की गर्दन धड़ से अलग कर सकें। गोली का निशाना साधने के लिए 'चाँदमारी' (लक्ष्य) ही काफी नहीं; उड़ते हुए बत्तक को मारना जरूरी है। साहस व स्थैर्य की परीक्षा के लिए सिंह को भी गोली का निशाना बनाना पड़ता है।

मानता हूँ 'मृगया' एक व्यसन है; किन्तु क्षत्रियों के लिए तथा राजाओं के लिए नहीं। वह उनका धर्म है, कर्तव्य है। महाकवि कालिदास 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में लिखते हैं—'उत्कर्षः स च धन्विनो यदिषवः सिध्यन्ति लक्षे चले।' गतिशील लक्ष्य में वाण-वेग ही धनुर्धर का चरम उत्कर्ष है। सोचिये, सम्पादकजी, हमारी दृष्टि कितनी एकांगी है ?

राजपूत भी 'आहेरिया' को धर्म मानते हैं, बसन्त के प्रारम्भ का दिन 'आहेरिया दिवस' होता था। इस दिन वे मृगया के लिए जाते थे और ऐसा विश्वास करते थे कि उस दिन की मृगया के परिणाम पर ही उनके पूरे वर्ष का भाग्य निर्भर करता है।

आदिवासियों में भी यह बात प्रचलित है। वे भी वर्ष में एक दिन वैशाखी पूर्णिमा को शिकार खेलने जाते हैं।

शायद यह आपको ज्ञात नहीं होगा कि जिस पारसनाथ पहाड़ (सम्मेद शिखर) को हम २० तीर्थंकरों की निर्वाण-भूमि मानते हैं वह सन्थाल परगना और आसपास के सन्थालों का शिकार-स्थल था। उनका यह अधिकार प्रिव्ही कौन्सिल द्वारा भी स्वीकृत है।

मुझे लग रहा है : इन सबके पीछे एक ही भावना थी कि वे रक्त-पात करें, रक्त-पात देखें ताकि वे शूरवीर हो सकें। हो सकता है देवी के सम्मुख होने वाली बलि-प्रथा के पीछे भी यही भावना रही हो।

सम्पादकजी, मेरा प्रश्न यह है कि चामुण्डराय हों या विमल शाह, चेटक हों या कुणिक (जिन्हें हम जैन राजा कहते हैं); उन्होंने शूरवीरता कैसे प्राप्त की ? 'प्राणातिपात विरमण' धर्म का पालन करके, या न करके ? यदि न करके तो उस समय 'प्राणातिपात विरमण' का क्या अर्थ रहा है ? क्या हम उन्हें 'श्रावक' कह सकते हैं; या नहीं ?

—गणेश ललवानी

जो अस्मिता कर्मों के उपशम, क्षयोपशम तथा उदय से निरपेक्ष है वह पारिणामिक है । यह आत्मा का स्वभाव है । काम्य/प्राप्य यही है ।

मार्गणा खोज को कहते हैं । ये भी चौदह हैं । मृग्य खोजने योग्य जीव है ।

मृगयिता श्रद्धावान् जीव है । मार्गणा खोज-प्रक्रिया है । गुरु-शिष्य आदि मार्गणोपाय हैं । गति, इन्द्रिय आदि मार्गणा-स्थान हैं । ये चौदह हैं ।

इनमें जीव को तलाशा जाता है । ये हैं—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेख्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक ।

इस तरह, कुल मिला कर, जैन जैविकी का मुख्य लक्ष्य जीव को उसकी सर्वांगीणता में खोजना, जानना है ।

यह देखना है कि वह कहाँ/कहाँ, किस/किस तरह आवृत/लिप्त है और किस तरह उसे अनावृत/निर्लिप्त किया जा सकता है;

वह किस तरह अपनी मूल/शुद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है ।

जैनदर्शन का केन्द्रबिन्दु मोक्ष है । सांसारिक दुःखों से संपूर्ण छुटकारा है ।

इस दृष्टि से वह तीन प्रक्रियाएँ अपनाता है ।

जीव की अस्मिताओं का अध्ययन ।

जीव के बहिर्मुख/पुद्गल-संपृक्त व्यक्तित्व का अध्ययन ।

सापेक्ष चिन्तन-प्रक्रिया ।

भेद-विज्ञान यानी 'आत्मा अलग और शरीर अलग' तथा 'अनेकान्त/स्याद्वाद के माध्यम से भेदविज्ञानमूलक सत्य का अनुसंधान जैन जैविकी का चरम लक्ष्य है ।

इसके अलावा जो भी जैविक अध्ययन हुआ है वह आनुषंगिक है । मूल लक्ष्य अहिंसा का परिपालन और

आत्मा के स्वभाव की परिपूर्ण विवृति (खुलाव) है ।

—प्रलयंकर

□□□

जन्तु : मन्तु : मनीषी

संस्कृत में जिन्दा प्राणी को 'जन्तु' कहते हैं । जन्तु यानी जीवडा (कीडा) । जो जीवडा मनन कर सकता है, उसे कहते हैं 'मन्तु' । मनन में जो विशेष प्रवीण होते हैं उन्हें कहते हैं 'मनीषी' । मनीषी यानी सयाना सही; लेकिन गहराई में उतर कर चिन्तन की जिसे आदत है उसे ही मनीषी कहते हैं ।

—काकासाहेब कालेलकर

दो सौ सोलह विषयों पर प्राकृत सूक्ति-चयनिका^१

समीक्ष्य ग्रन्थ एक लम्बी तपश्चर्या का सुफल है। प्राकृत वाङ्मय अथाह है। संकलयिता ने लगभग एक सौ बयालीस श्वेताम्बर-दिगम्बर प्राकृत-ग्रन्थों से सूक्तियों का व्यापक और सावधान आकलन किया है; सूक्तियाँ, जिनके द्वारा दो सौ सोलह विषयों को अकारादिक्रम में रखा गया है, विषयवार संयोजित हैं। धार्मिक दार्शनिक, आगमिक, नैतिक, साहित्यिक, मानवीय इत्यादि तमाम विषयों से सम्बन्धित सूक्त-वाक्यों/पंक्तियों को सार्थ प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत चयनिका से जहाँ एक ओर हमारा प्राचीन गौरव सुरक्षित हुआ है, वहीं दूसरी ओर इस तथ्य की भी स्पष्ट झलक मिली है कि हमारे पूर्वज किस तरह से सोचते थे; उनकी चिन्तन-प्रक्रिया कैसी थी? इतना ही नहीं सूक्तियों के अन्तर्गर्भ में-से हमें तत्कालीन जन-जीवन की एक प्रशस्त झाँकी भी सहज ही मिलती है। कुछ विसंगतियाँ भी हैं; यथा, 'बिखरे मोती' एक भावुक शीर्षक भले हीं हो; किन्तु उसके अन्तर्गत विविध विषयक सूक्तियों को संयोजित करना उचित नहीं है, वस्तुतः इसके लिए संकलनकार को ग्रन्थान्त में एक स्वतन्त्र परिशिष्ट देना था। हमारी राय में सूक्तियों के वर्गीकरण का अधिक तर्कसंगत और वैज्ञानिक होना जरूरी था—जरूरी असल में यह भी था कि कोश-रचना की परम्परा को जाना जाए और निभाया जाए। हमें विश्वास है अगले संस्करण में इस पर ध्यान देना संभव होगा। मूल्य वाजिब, छपाई निर्दोष, प्रस्तुति आकर्षक, संपादन सफल।

लेखन की अर्द्धशती का अभिनन्दन^२

प्रस्तुत अभिनन्दन-ग्रन्थ एक ऐसे मनीषी से संबन्धित है, जिसने अपनी करीब दो-तिहाई जिन्दगी स्याही और कलम को सौंप दी। पण्डित फूलचन्द्रजी के खाते में श्रम-ही-श्रम है (यश उतना नहीं है); उनकी साधना-यात्रा अनवरत है, जिसके प्रमुख पड़ाव हैं—निर्भीक चिन्तन, स्वाभिमान, लगन, समर्पण और सीमनस्य। समीक्ष्य ग्रन्थ में उनके व्यक्तित्व की इन विशेषताओं की स्पष्ट विवृति है। प्रस्तुत ग्रन्थ की संपूर्ण सामग्री पाँच खण्डों में विभाजित है। पृष्ठ छह और सात पर संपादकों ने पण्डितजी की समस्त कृतियों को एक साथ दे कर उनके कर्तृत्व की एक सफल झाँकी दे दी है : इस जानकारी के अनुसार उनकी चार मौलिक और इक्यावन संपादित कृतियाँ हैं। मौलिक कृतियों में सन् १९६३ में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'वर्ण, जाति और धर्म' उनके स्वतन्त्र और साहसी चिन्तन का

१. प्राकृत सूक्ति-कोश; मुनि चन्द्रप्रभसागर; जयश्री प्रकाशन, २२ ए, बुध अस्तोस्तागर लेन, कलकत्ता-९; पृष्ठ ३१२; मूल्य-पच्चीस रुपये; डिमाई-८/१९८५।
२. पं. फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ; पं. फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन सीमिति, वाराणसी; प्राप्ति-कमल प्रिंटिंग प्रेस, भैलपुर, वाराणसी-१०; पृष्ठ ६७९; मूल्य एक सौ एक रुपये; काउन-४/१९८५।

प्रतिनिधित्व करती है। पण्डितजी सन् १९२८ से १९८४ तक (आज भी) अर्थात् आधी शती से भी अधिक तक लेखन-कार्य करते रहे हैं। उन्होंने जितना दिया है, क्या उतना/वैसा हम कभी लौटा पायेंगे? पाँच खण्डों में-से प्रथम में संस्मरण, शुभाशीष, प्रशस्ति आदि; द्वितीय में जीवन-परिचय; तृतीय में व्यक्तित्व और कृतित्व; चतुर्थ में साहित्य-सर्जना तथा पाँचवें में कृतित्व-समीक्षा है। चतुर्थ खण्ड अन्तःसाक्ष्य और पंचम खण्ड मूल्यांकन से संबद्ध है। अन्तिम खण्ड से पता चलता है कि पण्डितजी कितने स्वतन्त्रचेता व्यक्ति रहे हैं, जिन्होंने उन कई समस्याओं पर विचार किया है, जिन्हें हमारा पण्डितवर्ग अक्सर टालता रहा है। निश्चय ही संपादकों ने सामग्री-संकलन में भारी श्रम किया है और पण्डितजी के समग्र व्यक्तित्व को सफलतापूर्वक समाज के सामने रखा है; किन्तु क्या जो सूचनाएँ उन्होंने इस ग्रन्थ में दी हैं वे आम जैन तक पहुँच पायेंगी? क्या एक सामान्य जैन इतना मूल्य दे कर इस ग्रन्थ को कभी खरीद पायेगा? क्या इन/ऐसे ग्रन्थों को ले कर हमें एक लोकमुलभ अल्पमोली विभूति-परिचय-माला की स्फूर्ति नहीं मिलती ताकि हम ऐसे मनीषियों के सरल जीवन-परिचय आम जैन तक पहुँचा पायें? कुल में, ग्रन्थ संकलनीय/मननीय है; संपादक-मण्डल इस बृहत् उपलब्धि के लिए बधाई का पात्र है।

एक निष्काम साधक का समग्र अनुशीलन^३

आलोच्य अभिनन्दन-ग्रन्थ का रसास्वाद बिलकुल भिन्न है। ग्रन्थ के लगभग साढ़े आठ सौ पृष्ठों में जहाँ एक ओर अभिनन्द्य के निःस्पृह व्यक्तित्व को उसकी समग्रता में विवृत किया गया है, वहीं दूसरी ओर २६१ पृष्ठ ऐसे भी हैं जिनमें उसकी समकालीन चेतना और चिन्तन के लिए संतुलित झरोखे खोल दिये गये हैं। संभवतः यशपालजी के युग की ऐसी कोई प्रवृत्ति बच नहीं रही है, जिसकी चर्चा उक्त पृष्ठों में न हुई हो। वस्तुतः यशपालजी का परिचय-जगत् बहुत बड़ा और अत्यन्त आत्मीय है अतः उन्हें ले कर जो भी लिखा गया है वह बहुत निष्कपट, अकृत्रिम और अनतिरंजित है। ग्रन्थ के आरंभ के पृष्ठों में उनके व्यक्तित्व को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में संजोया गया है, जिससे हमें न सिर्फ उनके व्यक्तित्व की विस्तृतियों का पता चलता है वरन् हम उसकी गहराइयों में भी गोते लगा पाते हैं। रचना-संसार के अन्तर्गत उनका सर्जक व्यक्तित्व संयोजित है, जिससे पता लगता है कि वे कवि हैं, कथाकार हैं, पत्रकार हैं, सूक्तिकार/निबन्धकार हैं तथा सहजता और जीवन्तता के पहियों पर दौड़ते जीवन-रथ पर आरूढ़ एक सफल/आत्मीय जन हैं। वास्तव में यह एक औपचारिक अभिनन्दन-ग्रन्थ ही नहीं है अपितु उससे आगे भी बहुत कुछ है; कहेँ, इस क्षेत्र में एक स्पष्ट दिशा-दर्शन है। ग्रन्थ की कला-संयोजना सुन्दर, मूल्य उचित, और संपादन उत्कृष्ट है।

—ने.चं.

३. निष्काम साधक श्री यशपाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ; संपादक—शेमचन्द्र 'सुमन' श्री यशपाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ समारोह समिति, सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली; पृष्ठ ८४३; मूल्य रु. २१५-००; क्राउन-४/१९८४.

लेखक स्तरीय; संपादन श्रेष्ठ

'तीर्थकर' के 'पूजा विशेषांक' के रूप में डॉ. नेमीचन्द जैन ने जो कवितामय पत्रिका गूँथ कर दी, वह अपना उद्धरण आप है।

अध्यात्म स्वयं में जिज्ञासा है; उसे भाषा देना अति दुरूह है। कौशल की ही कृपा से समाधान को हम दूसरों के अन्तर तक पहुँचा सकते हैं।

डॉ. नेमीचन्द जैन ने यह कर्म अति कुशलता से किया है।

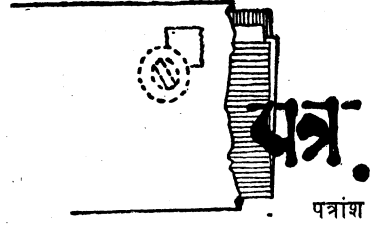
धन का दुरुपयोग कागजों की बद-किस्मती से नाम कमाने वालों का सगल बन गया है। छपास से छद्म लेखन छक नहीं पा रहा। ऐसे में संस्कृति के सूत्रों को थाम कर कीचड़ में से कुलाँचे भर-भर निकलना कीचड़ से अपने-आपको छीटेदार बनाये रखने वाले किस तरह थामे रहें उस सहीपन को जिनकी आज मन को जरूरत है।

इस संस्कृति-सूत्र को थाम कर डॉ. जैन ने 'तीर्थकर' को सर्वहित बना रख छोड़ा है।

प्राप्ति तो 'उसी' की करनी है, अन्तर, पद्धति में हो सकता है।

संवादों के माध्यम से सही को थमा कर सही को थामना बात को समझाते; समझते हुए बढ़ने का रास्ता है। बड़ी कुशलता से इस ज्ञान-धुमकड़ी को निभाया है डॉ. नेमीचन्द जैन ने। दूसरे पृष्ठ पर भवानी बाबू की संगति इतनी ठीक बैठी कि आनन्द आ गया।

अपनी-अपनी मान्यताओं के तई ईश्वर को बनाना/बनना आदमी के वश में है। इस पर जिरह की जा सकती है; लेकिन 'पूजा' कभी जिरह के बीच में नहीं अड़ती, वह वितरित हो जाती है 'तीर्थकर' की तरह।



पूरी पत्रिका व्योम सानन्द उजास भरी है। 'पाना' चाहने वाला अवश्य निमज्जित होगा। वैसे पैसे गिनना, पेज गिनने से जब जरूरी हो तब धर्मग्रन्थों और ऋषि-वार्ताओं को यह रूप ही देना पड़ता है। तीर्थकर आते हैं और उस अड़े/सड़े को छलाकर कि नारे लगाकर नीर को निर्बाध बहाव देते हैं।

'तीर्थकर' पसीने से कमाये गये एक-एक पैसे का कोटि गुणा सदुपयोग है। आज के इस 'गणित' में इससे अधिक और कहना असंगत है। काश, यह सीख कागद कारे कारण हारे भी लेते!

'तीर्थकर' का पूजा विशेषांक बुद्धि, हृदय एवं संवाद का अद्भुत स्वाद है। सारी बातचीत समझ को साकार करती-सी है। लेख स्तरीय, संगत हैं। संपादन श्रेष्ठ है।

—रमेश बलूनी

संपादक 'शान्ति लोक'
मेरठ (जनवरी, १९८६)

अत्यन्त स्तरीय; पठनीय

आपके संपादकीय अत्यन्त स्तरीय और पठनीय होते हैं। इक्कीसवीं सदी में जैनधर्म का क्या स्वरूप होगा, इसके बारे में आपका चिन्तन पढ़ा। मेरे विचार में हिंसा जब अपने चरमत्व पर पहुँच जाएगी, तो वह स्वयं ही अहिंसा की ओर मुड़ जाएगी।

—कन्हैयालाल सेठिया, कलकत्ता

संग्रहणीय

'तीर्थंकर' (जनवरी, १९८६) का संपादकीय संग्रहणीय है। आपने ठीक लक्ष्य को साधा है। एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी के विचार तर्क-शुद्ध और मननीय हैं।

—निरंजन जमीदार, इन्दौर

सुन्दर/ सटीक

आपने जैनधर्म इक्कीसवीं सदी के संपादकीय में खूब सुन्दर तथा सटीक लिखा। प्रायः लोगों ने पसन्द किया।

—प्रतापसिंह बेद, सिलीगुड़ी

वस्तुस्थिति दर्शक

जैनधर्म इक्कीसवीं सदी में (२) में आपने जो लिखा है, वह वस्तुस्थिति-दर्शक है। 'भारतीय संस्कृति को जैनाचार्यों का दार्शनिक योगदान' (डॉ. दरबारीलाल कोठिया) के लेख से मैं सहमत हूँ। पूज्य मुनि विद्यानन्दजी के उद्बोधन 'संसार सेमर का फूल' को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि संसार ही सबसे बड़ा इन्द्रजाल है और इस भूल-भुलैया से निकलना ही संसारानु-प्रेक्षा है। स्व. माखनलाल चतुर्वेदी का लेख आज भी महत्त्वपूर्ण है कि गोहत्या का प्रश्न धर्म का ही नहीं, देश की रोटियों का भी है।

—बालचन्द कोठारी, गुलबर्गा

नीर्तिकर

के गत चौदह वर्षों की सजिल्द फाइलें

वर्ष १, २ (अपूर्ण); प्रत्येक का मूल्य रु. २०-००

वर्ष ३ से १४ प्रत्येक का मूल्य रु. ३०-००

फाइलों के संपूर्ण सेट का मूल्य रु. ४००-००

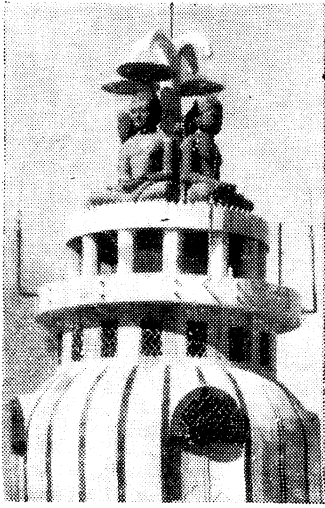
संपूर्ण सेट मँगवाने पर पोस्टेज आधा

रजिस्ट्री चार्ज एक फाइल का रु. ५.००, इसके बाद हर फाइल पर रु. १.०० अधिक। रेल्वे पार्सल से भेजने पर रेल्वे-भाड़ा और पेकिंग चार्ज रु. २०-००

वी. पी. पी. नहीं की जाएगी। अग्रिम मूल्य मनीऑर्डर/बैंक ड्राफ्ट से ही भेजिये।

संपर्क : प्रबन्ध संपादक, 'तीर्थंकर'; ६५, पत्रकार कॉलोनी,

कनाड़िया रोड, इन्दौर-४५२००१ (म.प्र.)



बिहार-स्थित प्रसिद्ध तीर्थ-क्षेत्र राज-गृही में आगामी ७ से १४ अप्रैल, ८६ तक विशाल पंचकल्याणक समारोह में भगवान् महावीर प्रथम देशनास्मारक का उद्घाटन १२ अप्रैल को राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह करेंगे। प्रथम देशनास्मारक के रूप में विपुलाचल (पर्वत) पर निर्मित ७२ फुट ऊँचे स्मारक पर पाँच-पाँच फुट ऊँची चार चतुर्मुखी पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनकी इस अवसर पर प्रतिष्ठा होगी।

ज्ञातव्य है, सन् १९७४-७५ में भगवान् महावीर के २५०० वें राष्ट्रव्यापी निर्वाणोत्सव पर समारोह के अध्यक्ष स्व. साहू शान्ति-प्रसादजी जैन के नेतृत्व में समाज ने यह निर्णय किया था कि विपुलाचल पर भ. महावीर के प्रथम उपदेश की स्मृति में एक भव्य स्मारक का निर्माण किया जाए। स्मारक के निर्माण का दायित्व साहू जैन ट्रस्ट को सौंपा गया था।

-इन्दौर से ९ किलोमीटर पश्चिम की ओर नवोदित तीर्थ गोम्मटगिरि गत ७ से १४ मार्च, ८६ तक आकर्षण का केन्द्र बना रहा। सप्ताह भर धूमधाम रही,

मेला-सा लगा रहा। प्रदेश-देश के हजारों नर-नारी इसके आस-पास बने रहे। श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर पंचकल्याणक बाहुबली जिन बिम्ब प्रतिष्ठा/महामस्ताभिषेक महोत्सव शास्त्रीय/परम्परागत अनुष्ठानों के साथ निर्विघ्न संपन्न हुआ। श्रीमती शरयू दपतरी के सफल संयोजन में संपन्न शाकाहार सम्मेलन, तथा श्राविका-संगम भी उल्लेखनीय रहे। आचार्य श्री विमल-सागरजी आदि मुनिवृन्द का सान्निध्य भी रहा। एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी के सतत मार्गदर्शन/प्रेरणा, समाजसेवी श्री बाबूलाल पाटोदी और उनके सहयोगियों के निरन्तर; अविराम परिश्रम का यह परिणाम है। इस अवसर पर मुनिश्री विद्यानन्दजी की अभिनव कृति 'मोहन-जो-दड़ो : जैन परम्परा और प्रमाण' की प्रथम प्रति धर्म-स्थल (कर्नाटक) के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेमड़े को भेंट की गयी। 'गोम्मटगिरि-सन्देश का विशेषांक 'मंगलाचरण' भी सामयिक और जानकारी-पूर्ण है।

-अखिल भारतीय जैन युवा मंच और भगवान् ऋषभदेव निर्वाणोत्सव समारोह समिति, जबलपुर के राष्ट्रीय संयोजक श्री राजेशकुमारसिंह वत्सल ने बताया है कि गत ७ फरवरी, १९८६ को श्रमण संस्कृति के अग्रदूत, कर्मभूमि काल के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का निर्वाणोत्सव-समारोह संपूर्ण राष्ट्र में विविध धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजनों के साथ संपन्न हुआ। कार्यालय में प्राप्त सूचना तथा संकलित जानकारी के अनुसार मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात, राजस्थान, बिहार और दिल्ली के लगभग १४० महानगरों/शहरों तथा कस्बों में यह छोटे/बड़े पैमाने पर आयोजित किया गया।

समाचार - परिशिष्ट

जैन जैविकी विशेषांक/८५

—सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरजी के पादमूल में कल्याण निकेतन की प्रस्तावित योजनाओं के अन्तर्गत भगवान् महावीर के सिद्धान्तों पर आधारित शिक्षा-केन्द्र, भ. पार्श्वनाथ प्रार्थना कक्ष, जैन शोध संस्थान एवं पुस्तकालय, जैन नैतिक शिक्षा का केन्द्रीय संस्थान, सन्मति संग्रहालय, पक्षी-चिकित्सालय, ध्यान केन्द्र आदि हैं। ज्ञातव्य है, स्व. गणेशप्रसादजी वर्णी की भावनाओं को ध्यान में रखकर यह निकेतन स्थापित किया गया है। गत १९ से २२ फरवरी, ८६ को संपन्न कार्यक्रमों में यहाँ आदर्श शिक्षा मंदिर का शिलान्यास आचार्य श्री कल्याण-सागरजी के सान्निध्य में किया गया।

—समग्र जैन समाज द्वारा संस्थापित रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनेलॉजी के माध्यम से किये गये प्रयासों के परिणाम-स्वरूप मद्रास विश्वविद्यालय में नवस्थापित जैन विद्या विभाग सितम्बर, ८५ से प्रारंभ हो गया है। डॉ. टी.जी. कलघटगी प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यशील हैं। जुलाई, ८६ में नये सत्र से इस विभाग के अन्तर्गत जैन दर्शन में एम.ए., एम. फिल. और सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम प्रचारित होंगे। तत्सम्बन्धी तैयारियाँ हो गयी हैं। सर्टिफिकेट तथा एम.ए. में आर्ट्स, साइन्स एवं कॉमर्स के स्नातक (ग्रेजुएट) प्रवेश ले सकेंगे। अध्ययन का माध्यम अंग्रेजी रखा गया है। विश्वविद्यालय के इस विभाग को प्रोत्साहित करने हेतु एम.ए. के छात्रों को दो सौ पचास रुपये मासिक छात्रवृत्ति देने का निश्चय किया है।

—अहमदाबाद में गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा संचालित प्राकृत-पालि विभाग की

ओर से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से जैन आगम साहित्य (श्वेताम्बर-दिगम्बर) पर एक अध्ययन-संगोष्ठी का आयोजन संभवतः अक्टूबर ८६ में किया जाने वाला है।

—‘हम एक हैं, हमें एक रहने दो!’ के भावनात्मक वातावरण में आचार्यश्री तुलसी अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति के अन्तर्गत जैन समन्वय प्रकोष्ठ द्वारा उदयपुर में गत १०-१२ फरवरी, ८६ को आयोजित जैन समन्वय सम्मेलन संपन्न हुआ।

—मुनिश्री सुशीलकुमारजी को स्व-सन्त हरचरणसिंह लोंगोवाल स्मृति फाउण्डेशन ने प्रथम लोंगोवाल स्मृति पुरस्कार से सम्मानित किया है।

—श्री दि. जैन पार्श्वनाथ तीर्थक्षेत्र कमेटी, बिजौलिया (भीलवाड़ा) के तत्त्वावधान में क्षेत्र के वार्षिक मेले के अवसर पर एक त्रिदिवसीय (२७-२९ मार्च, ८६) सेमिनार आयोजित किया गया है, जिसमें भ. पार्श्वनाथ की तपोभूमि बिजौलिया के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति के विभिन्न पक्षों/पहलुओं पर निबन्ध-वाचन तथा परिचर्चा हो रही है सेमिनार के संचालक हैं डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल।

—दि. जैन समाज इतिहास प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत प्रथम खण्डेवाल दि. समाज का विस्तृत इतिहास दो खण्डों में प्रकाशित हो रहा है, जिसके निदेशक एवं संपादक डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल हैं।

नये आजीवन सदस्य रु. २५१

८५७. श्री धर्मचन्द सिंघई कटंगीवाले
४४५, पबेनी का बाड़ा
हनुमान ताल
पो. जबलपुर-४८२००२ (म.प्र.)
८५८. श्री राजीव जैन
सुपुत्र-श्री प्रकाशचन्द जैन
क्लाँथ मर्चेंट,
गाँधी चौक
पो.अमरपाटन-४८५७७५ म.प्र.
८५९. श्री नेमचन्द जैन बघराजी वाले
गढ़ा छोटे जैन मन्दिर के पास
पो. गढ़ा-जबलपुर-४८२००२
८६०. श्री बालचन्द जैन
१५७, बी. के. पाल एवेन्यू
पो. कलकत्ता-७००-००५
८६१. श्री डी. जैन
३९, स्पेंसर रोड
लाइगेट ग्रीन
ब्रेडफोर्ड, यार्क शायर
बी.डी. ७-२ एच. डी. (इंग्लैण्ड)
८६२. श्री उग्रसेन जैन
सहायक संचालक,
म.प्र. शासन जीवन बीमा निगम
केन्द्रीय लायब्रेरी के पीछे
जियाजी चौक
पो.लशकर (ग्वालियर) ४७४००१
८६३. श्री चिरंजीलाल गोधा
८५०, आचार्यों का रास्ता
किशन पोल बाजार
पो. जयपुर-३०२ ००१
८६४. श्री राजेन्द्रकुमार जैन (नाहटा)
द्वारा : जैन ब्रदर्स, पेट्रोल पम्प
फलोर मिल्स के पास
पो. भोपाल-४६२०२०
८६५. श्री भीकमचन्द भंडारी
११८, मारवाड़ी रोड
पो. भोपाल-४६२००१
८६६. श्री आनन्दराज घीसुलाल तलेसरा
ई/२/१३, जलनिधि हाउसिंग
सोसायटी
तीसरा माला, बांगुरनगर
गोरेगाँव (पश्चिम)
पो. बम्बई-४०० ०९०
८६७. श्री चुनीलाल एच. मेहता
६८, हेमप्रभा, मरीनड्राइव
पो. बम्बई-४०० ०२०
८६८. श्री नेमिनाथ वाचनालय
दि. जैन समाज नेमीनगर
(जैन कॉलोनी)
बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग
पो. इन्दौर-४५२ ००९ (म.प्र.)
८६२. डॉ. प्रद्युम्नकुमार जैन,
प्रधानाचार्य
ए.एन. झा गवर्नमेंट इंटर कॉलेज
पो. रुद्रपुर-२६३१५३ (उ.प्र.)
८७०. श्री हुकमचन्द जैन
कोहिनूर बैलिंग कं. लि.
३, सीता बिल्डिंग
४, यशवन्त निवास रोड
पो. इन्दौर-४५२ ००१ (म.प्र.)

८७१. श्री सन्तोषकुमार जैन नेताजी
महावीर रेडीमेड स्टोर्स
सन्तोष मार्केट, कमनिया गेट
पो. जबलपुर-४८२ ००२ (म.प्र.)

८७२. श्री प्रदीप स्कूटर्स सेंटर
विनीत टॉकीज के सामने
गुजराती मार्केट
मंढाताल
पो. जबलपुर-४८२ ००२ (म.प्र.)

८७३. श्री कैलाशचन्द्र गुप्ता
१४१, जूना कसेरा बाखल
पो. इन्दौर-४५२ ००२ (म.प्र.)

८७४. श्री शान्तिलाल धाकड़
पाँवर बैटरी
२९६, तिलकनगर
पो. इन्दौर-४५२ ००१ (म.प्र.)

८७५. महावीर प्रसाद दवे
मैनेजर, सेंट्रल वेयर हाउस
पो. गोंदिया-४४१ ६०१ (महा.)

(पृष्ठ ६० का शेष)

इसके भीतर कहाँ-क्या है और उस सब पर हम किस तरह से नियंत्रण पा सकते हैं ।

केलीफोर्निया के एक रसायनविद् मासैल वोगेल का कथन है कि यदि हम चाहें तो अपने इस पेचीदा शरीर की प्रत्येक कोशिका में टहल सकते हैं; उसमें स्वयं को प्रविष्ट कर सकते हैं । छह सौ खरब कोशिकाओं के इस महानगर में बसी इन कोशिकाओं/उनके व्यक्तित्वों को यदि जान सकें तो हम अपनी मनोदशाओं पर चुस्त अन-

शासन रख सकते हैं । क्रोध; मान, माया, लोभ, जिन्हें जैन शब्दावली में 'कषाय' कहा गया है, कोशिकाओं के सावधान सर्वे द्वारा हम उन पर नियंत्रण रख सकते हैं ।

आत्मा को जानने के साथ ही यदि हम शरीर की प्रेक्षा भी करते हैं तो हम निश्चय ही एक सफल साधक हो सकते हैं । जिसने अपने शरीर को साध लिया, मानिये, उसने सब कुछ साध लिया । ज़रूरत शरीर को शत्रु मानने की नहीं है, बल्कि एक ऐसा अभिन्न मित्र मानने की है जो हमें हमारे उद्देश्य में पूरी-पूरी मदद कर सके । जो लोग प्राणिमात्र पर अक्रोध की बात करते हैं और स्वयं अपने शरीर के साथ बदसलूकी करते हैं, वे हज़ार कोशिश पर भी अपने गंतव्य तक नहीं पहुँच सकते । □

(शेष पृष्ठ ६१ का)

ओ_२ छोड़ती हैं जबकि श्वसन में ओ_२ का ग्रहण होता है और सीओ_२ छोड़ा जाता है । यही कारण है कि पेड़-पौधे दिन के प्रकाश में प्रकाश की विभिन्न तीव्रताओं के अनुपात में

ओ_२ (ऑक्सीजन) छोड़ते हैं और प्रकाश की अनुपस्थिति में यानी रात में सीओ_२ छोड़ते हैं । यह उपापचय की प्रक्रिया है । इसके नाना चक्र हैं । यह एक नैसर्गिक प्रक्रिया है, जिसके संपन्न होने में कोशिका की उल्लेखनीय भूमिका है ।

इस तरह पौधे साँस लेते हैं; विज्ञान की दृष्टि से; जैनधर्म की दृष्टि से ।

—प्रलयंकर ।

कक्ष भी चल पड़े। निराश्रित/अनाथ बच्चों के लिए संरक्षण-गृह खोले जाएँ, निराश्रित महिलाओं को, उनमें अध्यात्म के भाव जगा कर, उदासीन-आश्रमों में रखा जाए। न केवल इन कार्यों को बल्कि सभा/संस्थाओं/ट्रस्टों को भी सम्पन्न बनाया जाए, वे मात्र 'ब्याज' पर न आश्रित रहें। प्रतिवर्ष हर नगर का समाज अपने बुद्धि-जीवियों को सम्मानित करने की योजना बनाये; उन्हें पुरस्कृत किया जाए और समाज-हित के लिए बाँध कर रखा जाए। उनके आयोजनों से धन-संग्रह कर फण्ड में बढ़ौत्री की जाए।

निर्धनों की बच्चियों की शादी सम्पन्न कराने में सहयोग दिया जाए। 'बे पंचों को मनाते फिरें और पंच मुकरते फिरें' का नाटक बन्द किया जाए। जिस महोत्सव में कोई मुनि उपस्थित हों, तो प्रयास कर उनकी जीवनी किसी साहित्य-कार से निवेदन कर लिखवायी जाए और जैन मुनियों का शब्द-बद्ध परिचय-इतिहास तैयार किया जाए राष्ट्र-स्तर पर। इस तरह हर मुनि की प्रेरक गाथा जनसामान्य तक पहुँच सकेगी जिससे जन-जन प्रेरणा और आत्म-बोध पा सकेगा। स्मारिकाओं को सही स्वरूप मिल सकेगा। देश-भर में कुछ हज़ार होगी मुनियों की संख्या। क्या उनके लोकोपयोगी चरित्/इतिहास नहीं लिखवा सकता उनका भक्त-समाज ?

जिस दिन पंचकल्याणकों/अंजनशलाकाओं से अर्जित धन का उपयोग उक्त ढंग से बहु-आयामी हो जाएगा, उसी दिन से उनके गुण गाने का क्रम यह लेखनी प्रारम्भ कर देगी। □

'तीर्थंकर' के सम्बन्ध में तथ्य-सम्बन्धी घोषणा

प्रकाशन-स्थान	६५, पत्रकार कॉलोनी कनाड़िया रोड, इन्दौर ४५२ ००१
प्रकाशन-अवधि	मासिक
मुद्रक-प्रकाशक	प्रेमचन्द जैन
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	६५, पत्रकार कॉलोनी कनाड़िया रोड, इन्दौर ४५२ ००१
संपादक	डॉ. नेमाचन्द जैन
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	६५, पत्रकार कॉलोनी कनाड़िया रोड, इन्दौर ४५२ ००१
स्वामित्व	हीरा-भैया-प्रकाशन ६५, पत्रकार कॉलोनी कनाड़िया रोड, इन्दौर ४५२ ००१

मैं, प्रेमचन्द जैन, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

प्रेमचन्द जैन

प्रकाशक

१-३-१९८६

जैन जैविकी विशेषांक/८९

अहिंसा जीवन-धर्म है

अहिंसा, माता की गोद के समान, समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाली है। इस शब्द की मधुरता को चख कर प्राणियों के परस्पर वैरभाव का उपशम होता है। वैरभाव की निवृत्ति से हृदय में शान्ति की शीतल नदी प्रवाहित होती है। शान्ति की इस जलधारा में अवगाहन करने वाला विश्व ही तत्त्व-चिन्ता की ओर प्रवृत्त हो सकता है। इस प्रकार अहिंसा परम्परा-सम्बन्ध से तत्त्व-चिन्ता-परिणामी मोक्ष के लिए मुख्य साधन है।

-प. पू. एलाचार्य विद्यानन्द मुनिश्री

भारत रेडिएटर्स प्रा. लिमिटेड

मुख्य कार्यालय

८१, बजाज भवन

नरीमन प्वाइंट

बम्बई-४०० ०२१

दूरध्वनि : { २०२००८५
२०२१४९७

तार : स्मूथरन

कारखाना

विद्यानगरी मार्ग

कालिना, सांताक्रुझ

बम्बई-४०० ०९८

दूरध्वनि : { ६१२२९६५
६१२३४५७

तार : प्रेसवर्क



S. Kumars[®]

A Trusted Name in

**'TERENE' & 'TERENE' BLENDED
SUITINGS ○ SHIRTINGS ○ SAREES**

Phone : 29 84 32 / 31 58 33

Grams : 'Ashokamills', Bombay 400 026

Telex : 011-2952

Registered Office :

S. KUMARS

"NIRANJAN"

99, Marine Drive, BOMBAY-400 002

जैन दर्शन का अनमोल जवाहर
गहन एवं तात्त्विक दार्शनिक चर्चाओं का भंडार

सम्मति तर्क प्रकरण (खण्ड १)

मूलकर्ता—श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरि महाराज;

व्याख्याकार—तर्क पञ्चानन श्री अभयदेव सूरि महाराज;

मार्गदर्शक—न्यायविशारद आचार्य श्री विजयभुवन भानुसूरीश्वरजी;

विवरणकार—विद्वद्भर्य मुनिश्री जयसुन्दर विजयजी;

पहली बार यह ग्रन्थ (प्रथम खण्ड) हिन्दी विवेचन के साथ मुद्रित हुआ है। जैन एवं जैनेतर छहों दर्शनों के सिद्धान्तों की इस ग्रन्थ में गहराई से चर्चा एवं समीक्षा की गई है। मूल ग्रन्थकार, व्याख्याकार दोनों महर्षि जैन शासन के अप्रतिम विद्वान् एवं कुशल तार्किक थे। अन्य-अन्य एकान्तवादी दर्शनों का निरसन करके इस ग्रन्थ में सुप्रसिद्ध स्याद्वाद अनेकान्तवाद के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की गई है। प्रत्येक जैन के लिए गौरव लेने योग्य और हर दार्शनिक विद्वानों के लिए अभ्यास करने जैसा मननीय ग्रन्थ है। चिरकाल से दुर्लभ यह ग्रन्थ हिन्दी विवेचना सहित मुद्रित होने से अध्येता वर्ग के लिए अत्यन्त उपकारक बनेगा। आज ही आप की प्रति मंगवा लीजिये।

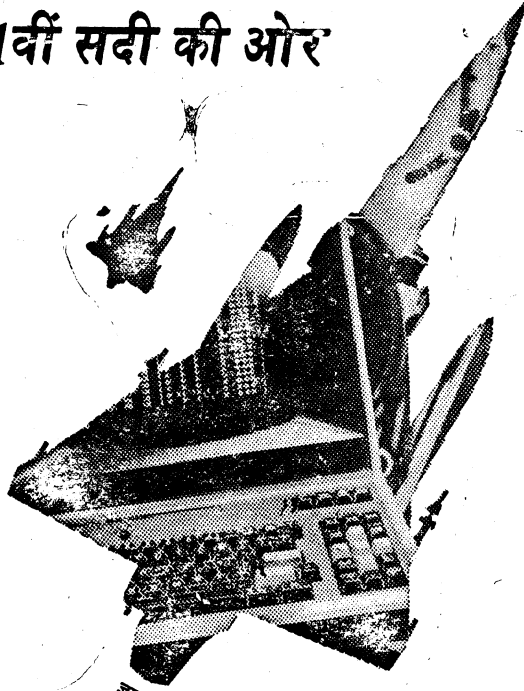
क्लाउन ८ पेजी— ६६० पृष्ठ; सुन्दर मुद्रण; प्रथम खण्ड; कीमत ८०-०० रुपये

न्याय विशारद आचार्य श्रीविजयभुवन भानुसूरीश्वरजी महाराज की प्रेरणा से प्रकाशित संस्कृत प्राकृत व हिन्दी ग्रंथ उपलब्ध हैं।

	मूल्य
ललित विस्तरा (हिन्दी विवेचन)	१२-००
ध्यान शतक (" ")	५-००
जैनधर्म का परिचय	७-००
महासती मदनरेखा	५-००
गणधरवाद	३-००
आहार-शुद्धि प्रकाश	६-००
नय-रहस्य (हिन्दी-विवेचन)	२५-००
शाख वार्ता समुच्चय १ से ८ ग्रंथ (छह जिल्दों में)	१४१-००
हरिभद्र योग भारती (हरिभद्र सूरि विरचित योग विशिका, योगशतक, योग दृष्टिसमुच्चय और योगबिन्दु, (चार सटीक ग्रंथ-समुद्र)	२०-००
उत्तराध्ययनसूत्र (भावविजय टीका)	७५-००
उत्तराध्ययन सूत्र (नेमिचन्द्रसूरि टीका)	१००-००
धर्म रत्न प्रकरण (सटीक)	१२-००
गुणस्थान क्रमारोह षट्त्रिंशत्षट्त्रिंशिका (सटीक)	१२-००
विशेषावश्यक भाष्य भाग १, २	१५०-००

प्राप्ति स्थान— दिव्यदर्शन साप्ताहिक; ६८ गुलाल वाडी बंबई-४००००४

21वीं सदी की ओर



ज्ञान-विज्ञान की नई मजिलें
कम्प्यूटर युग की हलचलें
सागर की गहराइयों में हमारे कीर्तिमान
अंतरिक्ष में उड़ते यान, अटॉकटिका के सफल अभियान।
एक महापरिवर्तन, हरेक मोड़ पर
हमारी प्रतीक्षा करता हुआ.....
एक नई क्रान्ति दरवाजे पर दस्तक देती हुई.....
हमें तत्पर रहना है इसके स्वागत के लिए।
अवश्य ही विज्ञान और उद्योग से
हम दूर करेंगे—गरीबी और अन्य समस्याएँ....
और बढ़ते चलेंगे

हम सब मिल कर आगे ही आगे ...

dayp 85/418

**श्रेष्ठतम साहित्य को अधिकतम पाठकों तक पहुँचाने की
दिशा में भारतीय ज्ञानपीठ का अभिनव अभियान
ज्ञानपीठ पेपरबैक**

दुर्लभ पुस्तकें : सबकी पहुँच में; लेखक और पाठक के बीच सीधा संवाद;
सम्पूर्ण सामग्री; सुविधाजनक आकार; मूल्य आधे से भी कम

पहला सेट

गुनाहों का देवता (उपन्यास) : धर्मवीर भारती

हिन्दी की सबसे अधिक बिकने वाली तीन-चार पुस्तकों में से एक । अब तक बीस संस्करण प्रकाशित । भावनाओं का अपार ज्वार । ११.००

कृष्णकली (उपन्यास) : शिवानी

कौन है कृष्णकली, यह जानने के लिए लाखों पाठक बेचैन रहे हैं और उन्होंने यह उपन्यास न जाने कितनी बार पढ़ा है; आप नहीं पढ़ेंगे ? ११.००

सत्रह कहानियाँ (कहानी संग्रह) : अमृता प्रीतम

१७ वें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित लेखिका की सत्रह कहानियाँ जिन्हें अमृताजी ने स्वयं अपनी बेहतरीन कहानियाँ माना है । ९.००

कगार की आग (उपन्यास) : हिमांशु जोशी

कभी-कभी जीना बस एक कगार की आग ही होता है । एक ऐसा आंचलिक उपन्यास जिसमें उठाई गई समस्याओं ने पूरे देश की अन्तरात्मा को झकझोर दिया । ७.००

दूसरा सेट

जलसागर (कहानी संग्रह) : ताराशंकर बन्धोपाध्याय

ज्ञानपीठ पुरस्कार (१९६६) से सम्मानित कालजयी उपन्यास 'गणदेवता' के यशस्वी बांग्ला लेखक ताराशंकर बन्धोपाध्याय की तेरह अति लोकप्रिय कहानियों का अपूर्व संग्रह । देश की माटी की गन्ध समेटे जीवन से सीधे उठाए गए जाने-पहचाने पात्र । ११.००

सतह से उठता आदमी (कहानी संग्रह) : ग. मा. मुक्तिबोध

आधुनिक हिन्दी साहित्य के बहुचर्चित स्तम्भ गजानन माधव मुक्तिबोध की यथार्थ को पूरे वेग, साहस और पौनपन के साथ उधाड़ कर रख देने वाली नौ चुनौती भरी कहानियाँ । ९.००

गहरे पानी पैठ (संकलन) : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

व्यापक अनुभव एवं विशद अध्ययन से चुनी हुई लघु कथाएँ, किंवदन्तियाँ, संस्मरण और आख्यान जो प्रकाश-स्तम्भ के समान दिशा-बोधक, प्रेरक और उन्नायक हैं । ११.००

सदाचार का तावीज (हास्य-व्यंग्य) : हरिशंकर परसाई

अग्रणी व्यंग्यकार परसाई की निर्मम लेखनी का मार्मिक चमत्कार, विद्रूपताओं और विसंगतियों पर तीखा प्रहार ! ९.००

रिट्ठणेमिचरिउ (यादवकाण्ड)

(अरिष्टनेमिचरित)

कविराज स्वयंभूदेव (आठवीं शती) कृत "रिट्ठणेमिचरिउ" नेमि-कृष्णकथापरक अपभ्रंश का प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य है। इसका सम्पूर्ण कथानक अठारह हजार श्लोक-प्रमाण है जो यादव, कुरु और युद्धकाण्ड शीर्षक से तीन खण्डों में प्रकाशनार्थ नियोजित है। प्रस्तुत कृति में यादवकाण्ड (प्रथम भाग) में वसुदेव-चरित, बलराम-चरित, कृष्ण द्वारा कंस-जरासंध आदि अनेक दुष्टों का संहार और रुक्मिणी-परिणय की कथा के साथ-साथ तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म, और अन्त में रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न की लीलाओं का विशेष वर्णन है।

अपभ्रंश मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ पहली बार प्रकाशित। सम्पादक-अनुवादक हैं—स्व. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, इन्दौर।

मूल्य ४०/-

सर्वार्थसिद्धि

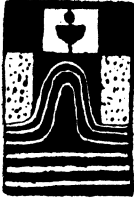
तत्त्वार्थसूत्र पर समय-समय पर अनेक टीकाएँ लिखी गई है। दिगम्बर सम्प्रदाय में इसकी देवनंदि पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति सबसे अधिक प्राचीन मानी जाती है। बहुत समय से इस ग्रन्थ के अनुपलब्ध होने से विद्वानों और स्वाध्याय-प्रेमियों को पर्याप्त कठिनाई उठानी पड़ रही थी। अब यह ग्रन्थ पुनर्मुद्रित होकर कपड़े की जिल्द में सुन्दर गेटअप के साथ बिक्री के लिए उपलब्ध है।

सम्पादन-अनुवाद — सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री।

मूल्य ७५/-

भारतीय ज्ञानपीठ

१८ इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-११०००३



बीज-कथा

- वे वनस्पतियाँ जिनका मूल अर्थात् जिनकी जड़ ही बीज हो (जो जड़ के बौने से उत्पन्न होती हैं) मूलबीज कही जाती हैं; जैसे - अदरक, हल्दी आदि ।
- अग्रभाग ही जिनका बीज हो अर्थात् जो कलम लगाने से उत्पन्न हों वे अग्रबीज हैं; जैसे - गुलाब आदि ।
- पर्व (पौर, जोड़) ही है बीज जिनका वे पर्वबीज हैं; जैसे - ईख, बेंत, बाँस आदि ।
- जो वनस्पतियाँ कन्द से उत्पन्न होती हैं, वे कन्दबीज कहलाती हैं; जैसे - आलू, सूरन, अरबी आदि ।
- जो स्कन्ध से उत्पन्न होती हैं उन्हें स्कन्धबीज कहते हैं; जैसे - कुँदरू, ढाक आदि ।
- जो वनस्पतियाँ बीज से उत्पन्न होती हैं वे बीजरूह कहलाती हैं, यथा- गेहूँ, ज्वार, चावल आदि ।
- जो नियत बीज आदि की अपेक्षारहित सिर्फ मिट्टी और जल के संबन्ध से उत्पन्न होती हैं उन्हें सम्मूर्छिम कहते हैं; जैसे- फफूँद, काई आदि ।

[श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी (राजस्थान) द्वारा प्रचारित]

जन्म : कंटकहीन थूहर का

वैज्ञानिक ज्ञान से भिन्न वनस्पति-सवर्द्धन का एक गुप्त रहस्य भी है : प्रेम। इस ज्ञानपूर्ण वाणी का लूथर बरबैक (अमेरिका का एक युगान्तरकारी वनस्पति-शास्त्री) ने उस समय उच्चारण किया, जब एक दिन मैं सांता रोजा कैलिफोर्निया में उनके उद्यान में उनके साथ टहल रहा था। हमलोग एक कंटकहीन थूहर के पौधे के पास खड़े हो गये। बरबैक ने कहा—“इस थूहर को कंटकहीन बनाने का परीक्षण करते समय मैं प्रेम के स्पन्दन की सृष्टि करने के लिए इन पौधों से प्रायः बातें किया करता था। मैं कहा करता था : 'तुम्हें कुछ भय नहीं है। तुम्हें आत्मरक्षा के लिए काँटों की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।' धीरे-धीरे यह रेगिस्तानी पौधा कंटकहीन किस्म में परिणत हो गया।” (व्हाइल आय वाज कंडक्टिंग माइ एक्सपेरीमेंट्स विद केवटी, आय ऑफन टॉकड टू द प्लांट्स टू क्रिएट ए वायब्रेशन ऑफ लव्ह। “यू हैव नथिंग टू फिअर।” | आय वुड टेल देम | “यू डोट नीड योर डिफेंसिव थॉर्न्स आय विल प्रोटेक्ट यू।”

—योगी कथामृत, पृ. ५०९/योगानन्द

आई. डी. सी./एम. पी./६२

लायसेन्स नं. ३

फरवरी-मार्च १९८६

(पहले से डाक-व्यय चुकाये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त)

